हमारा साहित्य

2022

संपादक
डॉ. रत्न बसोत्रा
सह संपादक
यशपाल निर्मल

जे.एंड के.अकैडमी आफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजज़,
जम्मू

HAMARA SAHITYA
2022

(A Collection of Articles based on the Cultural aspects)

Edited by
Dr. Rattan Basotra
Yashpaul Nirmal

© जे एंड के अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़

''हमारा साहित्य'' में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इन से जे. एंड के. अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़ का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

प्रकाशक : सचिव, जे एंड के अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, कैनाल रोड़, जम्मू–180001
फोन : 2542640, 2577643, 2579576
सम्पर्क : संपादक हिन्दी, जे एंड के अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, कैनाल रोड़, जम्मू–180001
प्रथम संस्करण : 200 प्रतियां
प्रकाशन वर्ष : 2023
मुद्रक : गवर्नमेंट रणबीर प्रैस, जम्मू
मूल्य : 170/–

संपादकीय

भारतीय संस्कृति विश्व की सबसे प्राचीन संस्कृतियों में से एक है। भारतीय संस्कृति लगभग 5000 वर्ष पुरानी है। विश्व की पहली और महान संस्कृति भारतीय संस्कृति को माना जाता है। भारत एक विविधतापूर्ण देश है, जहां विभिन्न धर्मों को मानने वाले लोग रहते हैं। अलग–अलग धर्मों के लोगों की अपनी भाषा, रीति–रिवाज और पर्व–त्यौहार हैं। इतनी भिन्नता होते हुए भी ये सभी एकता के सूत्र में बंधे हुए हैं। विश्व की महान संस्कृतियां विलुप्त हो चुकी हैं किन्तु हमारी भारतीय संस्कृति का विशेष गुण है। इसीलिए तो डॉ. इकबाल ने कहा था, '' कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी''

संस्कृति को अगर परिभाषित करें तो यह कह सकते हैं कि ''संस्कृति किसी समाज में गहराई तक व्याप्त गुणों के समग्र स्वरूप का नाम है, जो उस समाज में सोचने, विचारने, कार्य करने के स्वरूप में अन्तर्निहित होता है।'' जैसा कि पहले कहा कि भारतीय संस्कृति बहुत विशाल और समृद्ध है। इस में अलग–अलग प्रांतों की स्थानीय संस्कृतियों का समावेश देखने को मिलता है। भारतीय संस्कृति के अंदर हर राज्य और प्रदेश की संस्कृति समाहित है। हर प्रदेश के अपने रीति–रिवाज, पर्व–त्यौहार और परंपराएं हैं, किन्तु जब हम भारतीय संस्कृति की बात करते हैं तो यह सब उसी के अन्तर्गत आ जाते हैं।

''हमारा साहित्य'' का यह अंक संस्कृति पर आधारित है। इस अंक में विशेष रूप से केंद्र शासित प्रदेश जम्मू व कश्मीर और केंद्र शासित प्रदेश लद्धाख के विभिन्न सांस्कृतिक विषयों के साथ–साथ भारतीय

संस्कृति से संबंधित विषयों को भी समाहित करने का प्रयास किया गया है। जम्मू–कश्मीर और लद्दाख का सारा भूभाग भौगौलिक और आर्थिक दृष्टि से शेष भारत से भिन्नता रखता है। जम्मू प्रांत के रीति–रिवाज और परंपराएं कश्मीर से अलग हैं। इस प्रकार लद्दाख की अपनी सांस्कृतिक विरासत है। हमारा साहित्य के प्रस्तुत अंक में जम्मू व कश्मीर और लद्दाख की सांस्कृतिक झलक मात्र प्रस्तुत करके संपूर्ण देश को इस से अवगत करवाने का प्रयास किया गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि अकैडमी का यह प्रयास आपको अवश्य ही अच्छा लगेगा।

डॉ. रत्न बसोत्रा
संपादक

विषय सूची

1. डुग्गर की लोक गाथाओं में सांस्कृतिक विवेचन /प्रो. शिव निर्मोही/06
2. प्रहेलिका का अद्भुत संसार : महत्व एवं स्वरूप/डॉ. ओम गोस्वामी/24
3. डोगरी लोक कथाएं : परंपरा एवं विचारधारा /डॉ. नीरजा शर्मा/34
4. डुग्गर का सिद्धपीठ श्री नृसिंह मंदिर घगवाल/मंगल दास डोगरा/55
5. नाग संस्कृति और कश्मीर/अवतार कृष्ण राज़दान/65
6. किश्तवाड़ में बुद्धमत/केवल कृष्ण शर्मा/82
7. सजार (पाडर) के इतिहास व संस्कृति के दिग्दर्शन/मंगेश कुमार/86
8. वीर–भद्रेश्वर मठ राजौरी/विद्या सागर शर्मा/94
9. अखनूर के सांस्कृतिक स्थल/यशपाल निर्मल/103
10. लेह लद्दाख का सामाजिक और सांस्कृतिक परिदृश्य/सुभाष चंद्र ठाकुर/110
11. क्षीर भवानी – ऐतिहासिक तीर्थ/वीणा धर/117
12. लोक संस्कृति और साहित्य/रामदरश मिश्र/124
13. भारतीय जनमानस के नायक : राम/केशव मोहन पाण्डेय/137
14. धार्मिक पौधा तुलसी का पर्यावरणीय महत्व/अंकुश्री/144
15. तीर्थस्थलों का उद्भव और महत्व/गौरीशंकर वैश्य विनम्र/148

डुग्गर की लोक गाथाओं में सांस्कृतिक विवेचन

– प्रो.शिव निर्मोही

संस्कृति एक समूहवाची तथा व्यापक शब्द है। संस्कृति किसी जाति तथा देश की आत्मा है। संस्कृति जीवन के विविध क्षेत्रों, गूढ़ तत्वों व प्रवृत्तियों की विवेचना करती है। इस के द्वारा समाज के विचार, विश्वास, मान्यताएं रुढ़ियां, रहन–सहन, पर्व, उत्सव और त्यौहार, वेशभूषा, अलंकार तथा जीवन के अनेक आदर्श जाने जाते हैं।

संस्कृति का सम्बन्ध संस्कार से भी है। संस्कार व्यक्ति के भी होते हैं और जाति के भी होते हैं। प्रायः जातीय संस्कारों को ही संस्कृति कहा जाता है। धर्म और संस्कृति को कई विद्वान एक किन्तु कई भिन्न मानते हैं। इन दोनों में अंतर केवल इतना ही है कि धर्म में श्रुति, स्मृतियों तथा पुराण ग्रंथों का आधार रहता है किन्तु संस्कृति में परम्परा का आधार रहता है। संस्कृति का सम्बन्ध देश से अधिक है।

संस्कृति और सभ्यता में भी अंतर है, सभ्यता वह चीज है जो हमारे पास है, संस्कृति वह गुण है जो हम में व्याप्त है। हम यह भी कह सकते हैं कि संस्कृति सभ्यता की अपेक्षा महान है। संस्कृति जीवन का एक तरीका है और यह तरीका दिनकर के शब्दों में सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिस में हम जन्म लेते हैं।

संस्कृति का परिचय किसी देश और काल के लोक मानस का परिचय है। लोक मानस प्रत्येक युग में प्रत्येक काल में अपने भावों को

अभिव्यक्त करने में उत्सुक रहा है। चाहे वैदिक काल हो, चाहे उपनिषद, चाहे पुराण, बौद्ध, जैन काल रहा हो, प्रत्येक काल में लोक मानस की अभिवयक्तियां प्रस्फुटित होती रही हैं।

लोक मानस लोक साहित्य में अभिव्यक्त होता है। लोक साहित्य की विधा लोक गाथा में तो किसी भी प्रदेश या जाति का सांस्कृतिक इतिहास समाहित होता है, अतः लोक गाथाओं के अध्ययन से हम प्रत्येक प्रदेश या जाति के सांस्कृतिक इतिहास का अध्ययन कर सकते हैं।

डुग्गर की लोक गाथाओं के अध्ययन से ही हमें डुग्गर की आदिम जातियों के रहन – सहन, विश्वास आस्थाओं का परिज्ञान होता है। इन्हीं गाथाओं का अनुशीलन करने से हमें पता चलता है कि यक्ष और नाग इस प्रदेश की प्राचीनतम जातियां रही हैं।

यक्ष जाति का इस प्रदेश से गूढ़तम सम्बन्ध रहा है। यह कहना कठिन है कि इस भूखंड में पहले प्रवेश नाग जाति ने किया अथवा यक्ष जाति ने किया। किन्तु अनुमान यही लगाया जाता है कि नाग ही इस प्रदेश में सबसे पहले प्रविश्ट हुए। नाग डुग्गर प्रदेश में कहां से आए ? इसका उत्तर लोक गाथाओं में तो अन्तर्निहित नहीं है। किन्तु वासुकि पुराण का अनुशीलन करें तो लगता है कि वे कश्मीर घाटी से डुग्गर में आए। वे पहले वैरी नाग में बसे तदुपरांत वे डुग्गर की ओर उन्मुख हुए। वैरी नाग का परित्याग करने के बाद उन्होंने भद्रवकाश को अपना केन्द्र बनाया। बाद में वे पूरे डुग्गर प्रदेश में फैल गए।

डुग्गर में नाग–नायकों से सम्बन्धित जो गाथाएं उपलब्ध हुई हैं उन की संख्या एक सौ से भी अधिक है जिन में प्रमुख हैंः– राजा वासक, राजा भैड़, राजा काई, भुड़दार नाग, तनसर नाग, जलसर नाग, मणिसर नाग, बड़सर नाग, तर्म्यान नाग, बोला नाग, सुखल नाग, घैल नाग, नसौड़ा नाग, कुरलत नाग, मस्सल नाग, पांगन नाग, सुरगल नाग, शंखपाल नाग,

सांकरी नाग, मर गाड़ा, लौण्ड नाग, ढोल, भामन, लीट, चोलसू, काल्सू, सनस्, सुमाह्, अक्खड़, बनियार, सचाई, बतीह, मिलक, सुभद्र, गोभई, किलस, चतुर्भुज, बोंत,मेहल, मेह, शान्तनु, सुवार, सांगूड़, वीरु, नैलसू, कुरमत, सन्दुला, सपोर, लोहरा, बलिकरण, परिनाग, प्रिंगस नाग, कासर नाग, ख्ज्जी नाग, खुंगन नाग, टांडा नाग, शारदेर नाग।

लोक परम्परा के अनुसार वासुकि नाग पूरे डुग्गर प्रदेश का शासक था। उसने अपने पुत्र काई को अखनूर और भैड़ को जम्मू का राज्य प्रदान किया। इसी प्रकार नाग वंश में लाहुरनाग ने पुंछ में, शंखपाल ने सनासर में, बड़िनाग ने दबड़सर में नड नाग ने साम्बा में अपने राज्य स्थापित किए। नागराज एरावत का राज्य इरावती क्षेत्र में परिव्याप्त था जिसकी राजधानी कठुआ के निकट एरमां को माना जाता है।

निःसंदेह विद्वानों ने नागों का प्रागैतिहासिक काल 3200 ई. पूर्व से 2500 ई. पूर्व का माना है। किन्तु डुग्गर में नाग जाति और इस का प्रभाव आज तक बना हुआ है। डुग्गर के कई शिला लेखों में नाग राजाओं के नाम उत्कीर्ण हैं जिन में विभनाग और गणपति नाग के नाम शुद्ध महादेव के त्रिशूल में और गुहनाग का नाम पत्नीटाप के निकट स्थित एक नाग मंदिर में उत्कीर्ण है। इतिहासकार इन राजाओं का शासनकाल चौथी सदी ईसवी मानते हैं। नाग जाति का वजूद डुग्गर में इस अवधि के बाद भी बना रहा और आज स्थिति यह है कि डुग्गर के रियासी जनपद में नागों की बतीस बस्तियां हैं। इस क्षेत्र को अब नगोती अर्थात् नागों का घर नाम से अभिहित किया जाता है।

डुग्गर के सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन में नागों का प्रभाव आज भी बना हुआ है। नाग संस्कृति के अर्न्तगत जादू–टोना, प्रेतात्माओं की पूजा, प्रकृति के विभिन्न रूपों में भूत–आत्माओं की स्थिति मानकर उन की पूजा करना समाहित है।

डुग्गर की लोकगाथाओं का अध्ययन करने से पता चलता है नाग पशुचारक थे। वे चरागाहों की खोज में रहते थे। उनका जीवन यायावरी जैसा ही था। वे नदी किनारे अथवा वनों में रहना पसंद करते थे। नाग संस्कृति में नारी को भोग्या के रूप में लिया गया है। नाग प्रायः नारियों पर आसक्त हो जाते थे और उन का उपयोग विलासिता के लिए करते थे। सम्भवतः यही कारण है कि आज भी डुग्गर की नारियां जब भी नाग मंदिरों के बाहर से गुजरती हैं तो वे घूंघट निकाल लेती हैं।

नाग संस्कृति में माँस भक्षण वर्जित नहीं था। वे माँसाहारी थे। यही कारण है कि आज भी नाग देवताओं के अनुयायी पशु–बलि से इन देवताओं को संतुष्ट करते हैं।

लोकगाथाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि नाग स्वभाव से बड़े अक्खड़ और क्रूर होते थे। वे दंड देने में दया नहीं दिखाते थे। नाग राजाओं के पास कोई नियमित सेना नहीं होती थी। जब उन पर कोई बाहरी जाति प्रहार करती तो पूरा कबीला इकट्ठा हो जाता और शत्रु का सामना करता था।

नाग राजा का दरबार खुले स्थानों में किसी वृक्ष के नीचे आयोजित होता था। राजा अपनी प्रजा का पूरा ध्यान रखता था। यदि कोई बाहरी व्यक्ति नाग बस्ती में शरण लेता उसके लिए अनिवार्य था कि वह नाग परम्परा का अनुसरण करे और राजा के प्रति निष्ठावान रहे।

लोकगाथाओं के अध्ययन से इनकी सामाजिक स्थिति के विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि प्रारम्भ में इनमें गण–व्यवस्था थी जो बाद में संयुक्त परिवार में परिवर्तित हुई। नागों में गीत–संगीत के प्रति लगाव था। इन्हें कुशल नर्तक और गायक माना जाता था। इनकी रुची शिकार में भी थी। इनकी आजीविका का मुख्य साधन पशुपालन और कृषि कर्म था।

नागों की मर्यादा का स्तर बहुत ऊँचा था। वे चोरी जैसे दुष्कर्म से दूर रहते थे। उनकी वृत्ति सात्विक की अपेक्षा राजसिक अधिक थी।

नाग संस्कृति के मुख्य पर्व नाग पंचमी, नाग चौदस, जातर आदि थे। नाग सर्प पूजक थे, शिव को अपना इष्ट देव मानते थे, मतस्य पूजा करते थे और अश्व शीर्ष का पूजन करते थे। हँस, कुर्म पूजा का प्रचलन भी था।

नागों का जीवन दर्शन भौतिकवादी था। नाग लोकगाथाओं का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उन्होंने कई लोक कल्याणकारी कार्य किए जिस कारण उनके नेता देव लोक समाज में देवता के समान पूजे गए। नागों में सब से बड़ी विशेषता यह थी कि वे जल के विशेषज्ञ थे। उन्होंनें जल के स्रोत ढूंढे। नदियों के प्रवाह बदले। डुग्गर की नाग गाथाओं में ध्वनित है कि नागों ने त'वी तथा चन्द्रभागा के प्रवाह को भी बदला था और उन्हें जम्मू की ओर उन्मुख किया था। यथाः–

''हुकम कीता राजे बासकै देओ मिगी जल पलेआई
बाई पुत्तर राजे बासकै दे, टुरी पे तेगां ठाई,
मारी मंजलां राजा भैड़ जेह्ड़ा बास कुंडै गी जाई,
तप करियै राजे भैड़ नै गदा प्हाड़ै गी लाई।

अग्गें – अग्गें भैड़ देवता चलदा , पिच्छें तौ नमानी।
उप्पर जम्मुआ दै तौ बगै, पल्याई पिता गी देना पानी।
भरी गड़वा जला केह्ड़ा पिता जी स्नान कराई।
सीस पिता दी पाइयै बावै, सौ–सौ सगन मनाई।''

इसी प्रकार काई नाग द्वारा चन्द्रभागा का प्रवाह जम्मू की ओर उन्मुख करने का उल्लेख 'राजा काई'लोक गाथा में वर्णित है।

डुग्गर में नागों से सम्बनधित गाथाओं का ही प्रभाव है कि डुग्गर की संस्कृति में नाग संस्कृति का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

नागों के बाद डुग्गर की लोकगाथाओं में जिस प्रागैतिहासिक जाति का उल्लेख मिलता है, वह यक्ष जाति है। यक्ष प्रजाति ने डुग्गर की संस्कृति को कहां तक प्रभावित किया इस का ठीक से अनुमान लगाना कठिन है। नागों से सम्बन्धित जो लोक गाथाएं डुग्गर में उपलब्ध हैं उन में नागों और यक्षों को साथ–साथ चित्रित किया गया है। इन गाथाओं के अनुसार यक्ष नागों के मंत्री हुआ करते थे। वे कुशाग्र, नीतिज्ञ, दूरदर्शी और कुशल प्रशासक थे। किन्तु डुग्गर की लोक कथाओं में यक्षों को अर्द्ध सभ्य, आलसी और विलासी भी बताया गया है। वे झूठ बोलने में भी संकोच नहीं करते थे, यथाः–

चरासी पुत्तर पोत्तरे राजे नै ले मंडी सदाई,
सारें गी राजा पुच्छन करदा, भैड़ नज़र न आई
डरदे मारे यक्ष बजीरै, छोड़ेआ झूठ गलाई।

यक्ष बजीर न केवल झूठ ही बोलते थे अपितु वे कायर भी थे।

डोगरी लोक गाथाओं का अनुशीलन करने से लगता है कि नाग वंश के ह्रास के बाद डुग्गर में यक्ष शक्तिशाली राजा बने और उन्होंने डुग्गर में कई छोटे–छोटे राज्य स्थपित किए जिन में पौनी अंचल में यक्ष भानु, क्रिमची में राजा क्रिमिश यक्ष और धारा नगरी (जम्मू) में समुद्र यक्ष ने अपने–अपने राज्य स्थपित किए। किन्तु इन राजाओं का उल्लेख ऐतिहासिक तथा अन्य ग्रंथों में तो मिलता है किन्तु इन से सम्बन्धित कोई लोक गाथा डुग्गर में अभी उपलब्ध नहीं हुई है।

डोगरी के प्रख्यात विद्वान जगदीश चन्द्र साठे के अनुसार क्रिमची के राजा क्रिमिश यक्ष ने साकल के ग्रीक राजा मिनांड के साथ मिलकर

लगभग 148 ई. में पुद्द मित्र को लड़ाई में इसलिए मार गिराया था क्योंकि वह बुद्ध धर्म को नहीं मानता था।

आज स्थिति यह है कि डुग्गर में यक्ष एक देवता के रूप में पूजे जाते हैं। इन के कई मंदिर इस क्षेत्र में हैं। इनके नाम से जुड़े भी कई स्थान हैं, किन्तु यक्ष जाति के चिन्ह लुप्त हैं। कई विद्वानों का मत है कि डुग्गर के यक्षान्त ब्राह्मण यक्षों के वंशज हैं। कइयों का मत है कि यह प्रजाति अब कारगिल की पहाड़ियों में बसती है। वहां इन्हें यशाकुन नाम से अभिहित किया जाता है। कई कश्मीरी पंडित अपने नाम के साथ यक्ष उपपद का प्रयोग भी करते हैं।

नागों और यक्षों के बाद डुग्गर के सांस्कृतिक इतिहास में जो दो नए मत परिव्याप्त हुए उनके नाम थे शैव और शाक्त, वैसे तो नाग भी शिव के उपासक थे। वे भी नदियों की पूजा करते थे। किन्तु सिद्धान्ततः उनकी अपनी पूजा पद्धति थी।

शैव दर्शन ने न केवल डुग्गर के अपितु भारत के कई प्रदेशों को प्रभावित किया है। कश्मीर तो शैवमत का केन्द्र रहा है। डुग्गर में जिस शैवमत का प्रचार हुआ वह कश्मीर के शैव दर्शन से भिन्न लगता है। डुग्गर के शिव भोलेनाथ है। वे डुग्गर की आदिम जातियों के इष्टदेव हैं। वे सहज ही प्रसन्न हो जाते हैं। वे अति कृपालु, दयावान तथा करुणानिधि हैं। वे डुग्गर के दामाद भी हैं। डुग्गर की राजकुमारी गौरजां उनकी अर्द्धांगनी है। अतः डुग्गर के लोक गाथाकारों ने शिव से सम्बन्धित जो लोक गाथाएं सृजित की हैं वे दो प्रकार की हैं। एक में मान तलाई में उनके विवाह के आनन्दोत्सव का वर्णन है और दूसरी इन की स्तुति में लिखी गई एंजलियां हैं। एंजलियां भद्रवाही में हैं और इन में हिमाचली एंजलियों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। यथाः–

शामी–शामी– शामी मेरे नीरी – नीरी कार जी,

नीरी – नीरी कार शामी तीजो नमशकार जी।
नई थिए धरत शामी मेरे नई थिए अकास जी।
धरत ते अकास शामी बने ते संजोग जी।
नई थिए काशी शामी कुंड ते कैलास जी।
काशी ते कश्मीर शामी आपूं जो बनाए जी।
शंख बरनी काया ती जो नमशकार जी।
मूले – मूले थान शामी पद्दरे कश्मीर जी...।

अर्थात् हे शमन करने वाले शामी तुम निराकार हो, तुम्हें हे शामी मेरा नमस्कार है। न धरती ही थी हे शामी और न आकाश ही था। वह तो शामी संयोग से ही बने हैं, काशी और कैलाश पर्वत भी नहीं थे। हे शामी वह भी तो आपने अपने लिए ही बनाए थे। हे शामी तुम्हारी काया शंख के रंग वाली है, तुम्हें मेरा नमस्कार है। हे शामी तुम्हारा मूल स्थान कश्मीर था।

भद्रवाही ऐंचलियों में शिव निराकार रूप में वर्णित हैं तो डोगरी में वे साकार रूप में चित्रित हैं। वे वर रूप में हैंचल राजा की कन्या गौरजा का वरण करने वाले हैं। यथाः–

देस जम्मुआ नगरी चनैह्नी,
बसदा ऐ अंचल राजा,
अंचल दे घर जम्मी गौरजां,
बरनां शिवा नै लाई।

इसी प्रकार डुग्गर की कई गाथाओं में शिव को कहीं योगी के रूप में , कहीं जादूगर के रूप में, कहीं तांत्रिक के रूप में चित्रित किया गया है। 'शिव खेलन जड़ियां' लोकगाथा में जादू–जड़ियों, भूत–प्रेतों, मसान, जोगन आदि को भी शिव से जोड़ा गया है। शिव डुग्गर के सर्वोसर्वा देवता हैं। वे देवों के महादेव हैं।

इसी प्रकार डुग्गर में शक्ति पूजा से सम्बन्धित दर्जनों की संख्या में लोकगाथाएं उपलब्ध हैं। डुग्गर का लोकमानस दुर्गा के तीन रूप महालक्ष्मी, महाकाली और महा सरस्वती मानता है। और इन तीनों का समन्वित रूप त्रिकूट देवी अर्थात् माता वैष्णो देवी में देखता है। डुग्गर की लोक परम्परा के अनुसार देवी सब प्राणियों में शक्ति, दया, शांति, तुष्टि, बुद्धि का विकास करती है अतः यह उपासनीय है।

डुग्गर के कई शक्ति स्थलों में देवी को पशु बलि से तुष्ट करने की परम्परा भी रही है। इस से यह संकेत मिलता है कि देवियां आदम जाति की देन रही होंगी।

डुग्गर में बीमारी के समय, विवाह संस्कार करते समय, युद्ध के लिए प्रस्थान करते समय, मंगल कार्य करते समय, विपदा से मुक्ति पाने केलिए देवी पूजन का विधान रहा है।

डोगरी भाषा में देवी सम्बन्धी जो लोक गाथाएं उपलब्ध हैं, वे प्रशस्ति गीत लगती हैं। इन में मुख्य रूप से देवियों की स्तुति की गई है, यथा :–

पैह्ला दर्शन कौल कण्डोली दूआ देवा माई,
त्रि'या दर्शन चरण पादकै, चौथा अद्ध कुंवारी,
पंजमा दर्शन भैरो घाटी, छेमीं गुफा तुम्हारी,
बिच गुफा दे बैठी ऐ दुर्गा जागै जोत नराली,
उच्चै भौन माता दे लभदे, काले पर्वतें वाली,
चली–चली संग औंदे माता दै, जपदे नाम तुम्हारे,
हस्सी–हस्सी दर्शन देआं वैष्णो, भगत खड़े दुआरे।।

इसी गाथा में गाथाकार ने भगवान रामचन्द्र, हनुमान तथा पांडवों को वैष्णो का भक्त बताया है और ध्यानू भक्त की भी चर्चा की है। इस गाथा में एक बनियें का भी उपाख्यान है जिसने माता वैष्णो देवी का स्मरण करके संकट से मुक्ति पाई थी।

डुग्गर के लोक समाज में माता कालिका का भी बहुत महत्व है। गांव–गांव में माता के मंदिर हैं जिनमें माता कालिका गी गाथाएं गाई जाती हैं। एक गाथा की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं।:–

कलकतेआ चढ़ी कालका, रक्तै दी त्रेहाई,
बड्ढी मुंडियां गलै बिच्च पांदी, लैंदी हार बनाई,
सवा मनै दा खप्पर फड़े दा, उब्बी भरौंदा नाई,
बिच बाह्वे बहुलोचन राजा, आंह्दी कालका माई।

इसी प्रकार माता शीतला डुग्गर की कई जन जातियों की देवी है। लोक मान्यता है कि माता शीतला पशुओं की रक्षा करती है और मनोकामनाएं पूर्ण करती है। इस गाथा का एक रूप इस प्रकार हैः–

जल बिच जरमी जल बिच जाई जल बिच परकट होई,
औडी झीर गी सुखने जे आइयै सुन्ने दा जाल बनाई,

इसी प्रकार डुग्गर में माता सुकराला, माता बाला सुन्दरी, देवी चौंतरा, ममाया माता की लोक गाथाएं प्रचलित हैं जिन में लोक मानसिकता प्रतिबिंबित है।

डुग्गर के वैदिक देवताओं, विष्णु और उनके अवतारों से सम्बन्धित लोकगाथाएं तो उपलब्ध नहीं हैं किन्तु वैदिक देवताओं का उल्लेख इन लोक गाथाओं में अवश्य हुआ है। कुछ गाथाएं ऐसी अवश्य हैं जिन में उपनिषद कथाओं का रूपांतरण नाम बदल कर किया गया है। यथा शुनः

शेप की कथा को विरपानाथ की कारिका में समाहित किया गया है। राम, लक्ष्मण, कृष्ण, हनुमान, विष्णु, हरिचन्द्र, पांडव पुत्रों के नाम तो गाथाओं में आए हैं किन्तु उन पर स्वतंत्र लोक गाथाएं उपलब्ध नहीं हैं। केवल भद्रवाही में राम सम्बन्धी एंजली उपलब्ध है जिसका एक पद्यांश द्रश्टव्य हैः–

चुली अन्तर चुलडो भाई, रामे खेढ रचाई हो,
चिट्ठी लिखवाई रावणे रामें बाचनी लाई हो,
चिट्ठी बाचौरी रामचन्द्रें लंका जुद्ध संग्राम हो,
सदे तेरहे खुटी देवते रामे खेड्ड रचाई हो,.....।

अर्थात् राम ने यह संसार का अजब खेल रचाया है। यहां चूल्हे में दूसरा चूल्हा विद्यमान है। राम जी रावण को चिट्ठी लिखने लगे। राम जी ने बांचते हुए पत्र लिखवाया कि लंका में युद्ध और संग्राम होने जा रहा है।

डुग्गर के सांस्कृतिक इतिहास को जिस पंथ ने नया मोड़ दिया उस का नाम है – नाथ पंथ। यह पंथ डुग्गर के लोक समाज में बहुत ही लोकप्रिय हुआ। इस पंथ के प्रवर्तक थे गुरु गोरखनाथ, जिन्होंने योग और सिद्धियों पर अधिक बल दिया। गोरख नाथ ने पद्म, चक्र, नाड़ी ज्ञान, मातृकाओं तथा कुंडलिनी जागरण, षडांग तथा अतरंग योग पर अधिक बल दिया। नाथ पंथ में योग कैवल्य प्राप्ति का मुख्य साधन माना गया। कैवल्य प्राप्त करने के लिए साधक को योगी बनने के लिए प्रेरित किया गया।

नाथ पंथ ने अपने पंथ के प्रचार के लिए लोक–मानस में दो वर्ग तैयार किए जिन्हें जोगी और नाथ कहा जाने लगा। जोगी वर्ग का काम था योग गाथाओं का सृजन करना और घर–घर जा कर उन गाथाओं को लोगों को सुनाना तथा उन्हें नाथ पंथ की ओर उन्मुख करना। नाथों का काम था उपासना करना।

डुग्गर के योगियों ने नाथ पंथ के प्रचारार्थ कई गाथाएं रची जिन में राजा भरथरी, राजा गोपी चंन्द, पूर्ण भगत, राजा होड़ी, राजा रसाल, राजा मंडलीक, काली वीर, इत्यादि की लोक गाथाएं उल्लेखनीय हैं। इन गाथाओं में कई पात्र ऐतिहासिक लगते हैं और कई काल्पनिक भी हैं। किन्तु इन सब में एक बात सांझी है कि सभी पात्र गुरु गोरखनाथ की सद्प्रेरणा से राजपाठ का परित्याग करके योग साधना की ओर उन्मुख हुए और कैवल्य प्राप्त करने में सफल रहे।

डुग्गर की योगपरक गाथाओं में योगी को पहला पाठ पढ़ाया जाता है, वह है :–

"निक्कियें–निक्कियें गी भैनां कैह्ना, बड्डियें गी कैह्ना माई,
सम्भल – सम्भल बच्चा देस भरमने, भगमैं दा'ग नां लाई,
चिट्टी चादर मल – मल केढ़ी, भगमै दा'ग नां जाई।"

नाग पंथ का डुग्गर समाज पर एक कुप्रभाव यह भी पड़ा कि इस पंथ के योगियों ने अपनी मंत्र – तंत्र विद्या से समाज को भ्रमित भी किया जिस से लोक समाज आतंकित भी रहा।

नाग पंथ के बाद डुग्गर में सूफीवाद ने भी अपने पांव पसारे जिसका परिणाम यह निकला कि पीरों पर भी लोक गाथाएं लिखी जाने लगी जिन में पंजपीर लोकगाथा लोक समाज में बहुत लोकप्रिय हुई। नाथ जोगियों की भांति ही पीर भी जादू–टोना, मंत्र–तंत्र में दक्ष थे। वे भी अपनी विद्या का प्रदर्शन करने लगे। लोक समाज उनसे भी प्रभवित हुआ। कई लोग तो पीरों के इतने मुरीद हो गए कि उन्होंने अपने धर्म ही परिवर्तित कर लिए। जिन्होंने धर्म नहीं बदला वे पीरों की बंदना के लिए उनकी मजारों पर जाने लगे।

आज स्थिति यह है कि डुग्गर में सैकड़ों पीरों की दरगाहें हैं जिन में पीर रोशन शाह वली, पीर लखदाता, पीर बुड्ढन अली शाह, हज़रत

शाह मुहम्मद असरार–उल–दीन, हज़रत शाह मुहम्मद फरीद–उल दीन–कादरी, हज़रत शाह मुहम्मद अख्यार–उल–दीन, हज़रत शाह अबदाल साहब, हज़रत साहवान शेख सरकोटी, हज़रत शाह मुहम्मद गाज़ी, बाबा जीवन शाह, पीर जाहिर वली शाह, सांझा पीर, पीर शहन शाह वली, बाबा राह, पीर वलीशाह, बाबा वरकत अली, मियां मुहम्मद बख्श, छोटे शाह इत्यादि उल्लेखनीय हैं। सूफीमत के भी डुग्गर में कई साम्प्रदाय हैं जिन में चिश्ती, सुहरावर्दी, नक्सबंदी, सलारी, ऋषि इत्यादि प्रमुख हैं।

डुग्गर में सूफी संतों के नाम पर उर्स आयोजित होते हैं। और कई स्थानों पर पीरों के नाम पर दंगल भी करवाए जाते हैं। सच तो यह है कि डुग्गर के सांस्कृतिक जीवन में सूफी दरवेशों का महत्वपूर्ण स्थान है। इन सूफियों ने डुग्गर के सांस्कृतिक इतिहास को निःसंदेह एक नया मोड़ दिया है।

डुग्गर के सांस्कृतिक इतिहास में प्रणय गाथाओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती। प्रणय दो आत्माओं का पावन मिलन है। यह मिलन युगों–युगों से हो रहा है और विश्व के प्रत्येक देश में हो रहा है।

डुग्गर की प्रणय गाथाएं वेदना जन्य हैं। ये हृदय को झकझोरती हैं, कभी रुलाती हैं, कभी उदास करती हैं कभी भावों को उत्तेजित करती हैं।

पुरुष और नारी प्रेम तो प्राकृतिक है। इस लौकिक प्रेम की धारा तो धरावाहिक रूप से प्रवाहित रही है। प्रणय की तरंगें उफनती नदी की भांति डुग्गर प्रदेश में भी उछली जिन्होंने प्रणय गाथाओं को जन्म दिया।

डुग्गर की प्रसिद्ध प्रणय गाथाएं है– कुंजू चैंचलो, सुन्नी–भुक्खू, चन्न पलासा, गिलमू, मीरा जुलाही, राजा हौंस तथा ढोल बादशाह इत्यादि।

पशुचारक चरागाहों में बांसुरी के सुरों में आज भी हमें तान छेड़ते सुनाई देते हैं। महिलाएं घास काटते, धान कूटते, कृषि कर्म करते इन्हीं गाथाओं को लयबद्ध स्वर में गाती हैं तो वातावरण में मधुरता छा जाती है, यथाः–

कप्पड़े धोआं छम–छम रोआं कुंजुआं, बिच वटन नसाणी हो,
हाय बो मेरिये, जिंदे बिच वटण नसाणी हो,
लोक तां गलांदे काली–काली चंचलों, तूं तां मरुए दी डाह्ली हो,
हाय बो मेरिये जिंदे तों मरुए दी डाह्ली हो,।

डुग्गर के सांस्कृतिक इतिहास में ग्राम देवी–देवताओं, कुल देवी–देवताओं, सतियों शीलावंतियों का भी विशिष्ट स्थान है। इन देवी देवताओं के साथ डुग्गर की लोक मानसिकता जुड़ी हुई है। डुग्गर के ग्रामीणों के हृदय में वेद, पुराण, धर्मशास्त्र तथा लोक परम्परागत देवी देवताओं दे प्रत्येक रूप की पूजा का भाव व्याप्त है। उन की दृष्टि में सभी ईश्वर हैं और सर्वत्र ब्रह्म विद्यमान है। रूपों की विचित्रता तथा अनेकता में उन का भाव नहीं रमता, उन की आस्था तो है उस परम शक्तिशाली ब्रह्म में जो किसी भी विशेष देवी देवता के माध्यम से प्रभावपूर्ण हो सकता है।

डुग्गर के ग्राम देवताओं और कुल देवताओं में अधिकांश समाज के वे निर्दोष प्राणी हैं जो किसी क्रूर राजा अथवा सामंत की यातना का शिकार बने। या जिन्हें महल अथवा दुर्ग का निर्माण करवाते समय बलि के रूप में नींवों के नीचे चिना गया या वे व्यकित हैं जिन्होंने पाड़ा प्रथा के अंतर्गत अन्याय के विरोध में आत्मघात किया था जो जनकल्याण का कार्य करते हुए देव पद को प्राप्त हुए।

इसी प्रकार कुल देवियों में भी अधिकांश डुग्गर की वे सतियां और शिलावंतियां हैं जो पति अथवा पुत्र की अंत्येष्टि के साथ जलीं अथवा जिन्होंने अन्याय के विरोध में अपने प्राणोत्सर्ग किए।

डुग्गर में कुल और ग्राम देवी देवताओं से सम्बन्धित लोक गाथाओं की संख्या सैंकड़ों में है किन्तु इन में प्रमुख निम्नलिखित हैं:–

बाबा जित्तो, दाता रणपत, बाबा इन्दो, बाबा फतु, बाबा कौड़ा, बाबा कान्ह, बाबा थोलू, बाबा मेई मल्ल, बाबा शिवो, बाबा पोतो, बाबा भैरो, बाबा पुरी, बाबा अम्बो, दाता लीखो, दाता हल्ली, दाता रंगू, दाता बल्ल, बाबा भरोला, दाता सुक्खो, दाता वीरम, दाता विद्दो, बाबा सुब्बा, बाबा उच्चो, बाबा नौर, बाबा जियो सरदारी, दाता अरजो, बाबा ब्रह्मदेव, बाबा बंगी, बाबा मानक, बाबा कैलू, बाबा सुलक्खन इत्यादि।

लोक समाज ने इन सब शहीदों को देवत्व प्रदान किया और इन की आत्मा की शांति के लिए इन की पूजा की।

इन सब कुल देवताओं की लोक गाथाओं के प्रसंग बड़े ही हृदय स्पर्शी और वेदना जन्य हैं। यथा बाबा जित्तो के गेंहूं के ढेर को मेहता वीर सिंह छीनने का प्रयास करता है तो बावा गेहूं के ढेर पर खड़ा हो जाता है और बर्छी निकाल कर कहता है:–

रुढ़ी गेआ धर्म थुआढ़ा मैह्तेआ, त्रुट्टी मित्रोचारी,
रुक्खी कनक निं खायां मैह्तेआ दिन्ना मास रलाई।

मेहता! तुम्हारा धर्म नष्ट हो गया है, तुम से मित्रता टूट गई है। मेरी गंदुम मत खाना, लो, साथ में मेरा मांस भी खा लेना।

जित्तो ने कटारा अपने पेट में झौंक दिया। सत्य, न्याय औरे धर्म का अनुसरण करने वाला डोगरा कृषक परास्त हुआ। छल और कपट की विजय हुई। शोशक और शोषित की यही लड़ाई पीढ़ियों से डुग्गर के लोक समाज में चली आ रही है। निरीह और साधनहीन व्यक्ति शहीद होते गए

और उनकी देहरियां बनती गई। लोक गाथाएं गाई गई किन्तु उन्हें सामाजिक न्याय न मिला।

यही स्थिति डुग्गर की महिलाओं की भी रही। वे भी सामंतवाद की क्रूरता का शिकार बनीं। राज बहु रुल्ल लोक गाथा में राजगिर ने रानी को दीवार में खड़ी करके दीवार चिनना शुरू की तो दीवार उसकी कमर तक आ गई। अपने वक्ष स्थल को देखकर उसे अपने बच्चे दी याद आई तो उसने राजगिर से कहाः–

''लक्क वे लक्क मिगी दब्ब बटैह्ड़ेआ
अड़ेआ छात्ती बांदी रैह्न दे जरूर,
गोदी दे बिच मेरा बालक ञ्याना,
अड़ेआ उस दुद्ध पीना वे जरूर।''

डुग्गर की संस्कृति को मुखरित करती ऐसी कितनी ही कुल देवियों की गाथाएं लोक समाज में आज भी प्रचलित हैं। इन गाथाओं में प्रमुख हैं:–

''बूआ कौड़ी, दाती लड्डो, बूआ मक्खां, बूआ अमरो, बूआ भुक्खी, बूआ शीला, बूआ सत्यावादी, दाती नारु, धब्बुजा वाली दाती, दाती चागु, बूआ भागां, दाती त्रिप्ता, बूआ रत्नो, दाती सुखदेई, बूआ सोबां, आदि की लोकगाथाएं।''

डुग्गर के सांस्कृतिक इतिहास में ऐतिहासिक लोक गाथाओं का भी अपना विशेष स्थान है। ऐतिहासिक लोक गाथाओं में न केवल डुग्गर के इतिहासिक पुरुषों का परिचय मिलता है अपितु इन गाथाओं के माध्यम से हमें युद्धवीरों, युद्धों, संधियों तथ राज्यों के मध्य हुई सीमाओं को लेकर छोटी–बड़ी लड़ाइयों का विवरण भी मिलता है। इन गाथाओं से हमें उन

लोकनायकों की जानकारी मिलती है जो अपने देश की स्वतंत्रता के लिए शहीद हुए।

डुग्गर में जो इतिहासिक गाथाएं उपलब्ध हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं– मि'यां नाथ की वार, अमर सिंह जन्द्राहिया की वार, राजा कृपाल देव की वार, राजा जगत पठानिया की वार, राम सिंह पठानिया की वार, मीरदास चौहान की वार, मि'यां डीडो की वार, जरनैल बाज सिंह की वार, शमस राज बल्ली की वार, नूरा की वार, नापा की वार, जेमल फता की वार, राजा गजे सिंह की वार, बजीर वस्तीराम की वार, तथा राजा हरि सिंह की वार इत्यादि, इन वारों में डुग्गर का इतिहास मुखरित है।

पंजाब नरेश महाराजा रणजीत सिंह के शानकाल में कई जम्बाल तथा अन्य सरदारों ने खालसा सलतनत की अधीनता स्वीकार कर ली। किन्तु मि'यां डीडो जम्मू की क्षेत्रीय स्वतंत्रता के लिए लड़ता रहा। वह खालसा सेना को युद्ध के लिए ललकारता रहा। उसने उन्हें चेतावनी देते हुए कहाः–

छामां खड़ोई मि'यां डीडो ललकार जो दिंदा
बैरिया छोड़ी दे साढ़ी कंढी छोड़ी दे
अपने मांझे दा मुल्क सम्भाल
अपने ल्हौरा दा मुल्क सम्भाल

वह खालसा सेना के साथ लड़ता रहा और लड़ते–लड़ते ही शहीद हुआ। अन्ततः उसका स्वप्न सन् 1846 ई. में पूरा हुआ जब डुग्गर क्षेत्र लाहौर से आजाद हुआ। और एक स्वतंत्र राज्य के रूप में उभरा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि डुग्गर की लोक गाथाओं में डुग्गर के सांस्कृतिक इतिहास के कई पक्ष समाहित हैं। इन गाथाओं के अध्ययन से हमें इस प्रदेश विशेष का जीवन दर्शन, धर्म, सामाजिक व्यवस्था, पूजा

विधियां, देव पूजा, पर्व, मेले, व्रत–त्यौहारों का विवरण, शकुन विचार, जादू–टोना टोटका, मंत्र चिकित्सा, बलि प्रथा, भूत–प्रेत मसान के प्रति विश्वास, लोक विश्वास, श्राप, मन्नत, संख्या विश्वास, स्थानीय परम्पराएं, आस्थाएं और विश्वास, रूढ़ियों का विवरण मिलता है। ये लोक गाथाएं निःसंदेह डुग्गर के सांस्कृतिक इतिहास को अभिव्यक्त करती हैं।

ooo

प्रहेलिका का अद्‌भुत संसार : महत्व एवं स्वरूप

–डॉ. ओम गोस्वामी

प्रहेलिका, बुझारत अथवा पहेली बुद्धि को सान देने का बौद्धिक उपकरण है। यह मानव की बुद्धिगत क्षमता को बढ़ाकर तेज करती है। प्रायः बुझारत का प्रयोजन श्रोता के समक्ष प्रश्न या प्रश्नावली रख कर दूसरे की अक्ल को परखना भी होता है। शैली की दृष्टि से पहेली, श्रोता को शाब्दिक रचना द्वारा परखने का प्रयास है। श्रोता इस प्रहेलिका के सही अर्थ का अनुमान लगाता रह जाता है। बुझारत अपने वाच्यार्थ द्वारा सुनने वाले के समक्ष जिस विधि से प्रश्न को दुरुह बनाती है, उसमें प्रतीक, तुलना, उत्प्रेक्षा आदि विधियों का प्रयोग भी किया जाता है। अतएवं, बुझारत मस्तिष्कीय व्यायाम भी है। ज्ञानपेक्षु बालक–बालिकाओ एवं युवाओं के समक्ष ज्ञान के विविध आयामों को उद्‌घाटित करना इसका अभीष्ट होता है। इसलिए वर्तमान में पहेलियों को दिमागी छेड़खानी (Brain Teaser) का उपकरण भी माना जाता है। बुझारत बेहद रोचक भी होती है।

आजकल अंग्रेजी भाषा में आल–कविताओं को प्रहेलिका की शैली में रचकर उन्हें अति रम्य एवं रोचक बना दिया जाता है। हिन्दी में भी ऐसी बाल कविताएं प्रयाप्त संख्या में उपलब्ध हैं। जबकि विकास की राह पर चल रही डोगरी आदि भाषाओं में इस शैली के प्रयास किए जाने की प्रबल संभावनाएं मौजूद हैं। मानना होगा कि बुझारतबादी बाल कविता का भविष्य बेहद उज्जवल है।

डोगरी में ''फलौनियां पाना'' पद का मुहावरे वाला अर्थ है– अस्पष्ट, उलझी हुई या रहस्य में आवेष्ठित बातें करना। यह अंग्रेजी व्यंजना

– To speak in or pose riddles का वाचक मुहावरा (Idiom) है। ''रिड्डल'' का शब्दकोषीय अर्थ है– Something (singular) that is confusing or a problem that is difficult to solve." यह तो हुआ भाषा वैज्ञानिक अर्थ ; किन्तु परम्परागत बुझारत को आंग्ल भाषी विद्वानों ने यों परिभाषित किया है – "A question or statement intentionally pharased so as to require ingenuity in ascertain its answer or meaning."

बुद्धि विकास का साधन : बुझारत–

पहेली अथवा बुझारत मानव के बुद्धिवादी होने का प्रथम प्रमाण है। मानवीय बुद्धि मूलतः समस्यामूलक प्रश्नों का उत्तर ढूंढते हुए ही लोक संस्कृति को विकसित कर पाई है। दैन्य जीवन के अनुभवों और समस्याओं को स्मृति में समोने की प्रवृत्तिवश मानव मेधा ने स्वतः प्रहेलिका नामक विद्या का आविष्कार किया होगा। इसके द्वारा मानव जाति में तार्किकता का विकास हुआ होगा। यदि आदिम समाजों की पहेलियों का आकलन किया जाए तो यह बात स्पष्ट होती है कि उनमें सांकेतिकता और प्रतीकात्मकता का पुट न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान है। इस से अंदाजा लगाया जा सकता है कि आदि काल में पहेली विद्या कभी लोक –धर्म का अंग रही थी और इसका उपयोग अपनी वंशगत परम्पराओं एवं रीति–रिवाजों को व्यक्त करने के लिए भी किया जाता था।

पहेली बूझना लोक समाज की प्राचीन प्रवृत्ति है। इसलिए इन्हें उन लोगों की शिक्षा का साधन कहा जाता है, जिन्हें औपचारिक शिक्षा की सुविधा नहीं मिल पाती। बुझारत में लोक जीवन की यथार्थ अनुभूति के दर्शन होते हैं। इनके द्वारा पदार्थों की परख कला को भी लोक–मानस निरंतर विकसित करता है। इनके द्वारा बुद्धि का विकास होता है। हिन्दी विश्वकोष में पहेली को बुद्धि का सर्वश्रेष्ठ व्यायाम बखाना गया है।[1]

बुझारत में निहित सरल प्रश्न या समस्या का अभिप्राय ज्ञानवर्धन करना भी है। इनके द्वारा कई उपयोगी विषयों के बारे में जानकारी सहज ढंग से प्रदान की जाती है। पश्चिमीं लोकवार्ताविद् चार्ल्स फ्रांसिस पोटर का कथन है कि बचपन में रात के समय वे अग्नि के समीप बैठ कर पहेलियां बूझा करते थे। उनके माता पिता उन्हें तब तक नई बुझारत नहीं पूछते थे जब तक कि वे पहले पूछी गई बुझारत का समाधान ढूंढने में हर संभव प्रयास नहीं कर लेते थे। इस भांति बुझारत को वे अपने बचपन की शिक्षा का एक अंग मानते है और इन्हें स्कूली शिक्षा से अधिक मनोरंजक मानते हैं।[2]

लोक समाज में बुझारत के माध्यम से बाल–समाज को दी जाने वाली शिक्षा आज भी खेल–खेल में शिक्षित करने की प्रणाली के समान महत्वपूर्ण है। ज्ञान बर्धन के अतिरिक्त बुझारतें मनोरंजन का सुचारू माध्यम भी हैं। यह कल्पना की उड़ान का क्षितिज विस्तृत करती हैं, बुद्धि के कल–पेच कस कर सोचने – विचारने की शक्ति को तीव्र करती हैं। इन्हें बुद्धि एवं चातुर्य का साधन भी माना जाता है।

शब्द–बिंब बुझारत–

बुझारत एक शब्द चित्र है। इस शब्द चित्र से प्राप्त होने वाले संकेतों को ध्यान में रखकर बुझारत का उत्तर ढुंढने के लिए बुद्धि पर जोर डालते हुए सोच–समझ कर उत्तर दिया जाता है। इसलिए बुद्धि परिक्षा के अतिरिक्त यह बौद्धिक व्यायाम,बौद्धिक विकास तथा हाजिर–जवाबी की कला को विस्तार देने का साधन भी सिद्ध होती है। इसका आश्रय पाकर तर्क एवं कल्पना शक्ति तीव्रतर होती जाती है।

मानस–पटल में अवस्थित चिंतन–जगत का प्रवेश द्वार प्रहेलिका विधा ही है। बुझारत का उत्तर पाने की चिंतनावस्था में मानव मन कई जोड़–तोड़ करता हुआ, स्मरण शक्ति की डोरों को हिला कर उन्हें किसी एकमत पर केंद्रित करके किसी नतीजे पर पहुंचने का प्रयास करता है। इस प्रक्रिया में किसी वस्तु को जांचने एवं परखने के लिए उसे अनेक ढंग

सुझाई देते हैं जो मनुष्य की परख–शक्ति और कल्पना शक्ति को खाद एवं जल देकर और अधिक उपजाऊ बनाते हैं।[3]

बुद्धि परिक्षा के लिए सीधी–सरल ललकार और एक प्रकार का खेल होने से बुझारत बूझने–बुझाने में निमग्न मन इस व्यायाम से उकताते नहीं हैं। बुझारत न बूझ पाने पर हार की अनुभूति मन को रुलाती नहीं है। बल्कि जब बुझारत का उत्तर जो प्रायः सुपरिचित स्थान अथवा साधरण जीवन से संबंधित होता है तो हारने वाले के मन में एक ऐसी सुखद अनुभूति होती है जिससे अपना ज्ञानवर्धन होने की तुष्टि – भावना सम्मिलित रहती है। यह अहसास उसमें खिलाड़ीपन की भावना उत्पन्न करके पुनः एकाग्रचित होकर सोचने और पहेली बूझने में सहायक होता है।

बुझारत के विषय के स्तर पर वे चीजें वर्णित की गई होती हैं जिनका संबंध दैनिक जीवन और जन साधारण से होता है। समय के साथ–साथ नए विषयों को भी बुझारत में स्थान मिलता रहता है। इस प्रकार बुझारत नयी सभ्यता को पुरानी सभ्यता के नमूनों का वह तोहफा देती है जिसे उसने सदियों तक संभले रखा है। इसलिए कहा गया है कि यदि बुझारत का विकास न हुआ होता तो मानव–ज्ञान और मजोरंजन का यह विस्तृत क्षेत्र यों ही छूट जाता।4

सूझ–बूझ के मुख्य वर्ग–

बुझारत में निहित सूझ–बूझ के आयाम को दृष्टि में रखकर ही इस कला की सराहना करते हुए डॉ. गोविंद चातक बुझारत की पैन्नी दृष्टि को कबीर की उल्टवासियों, सूरदास के दृष्टिकूटों, केशव के कठिन–काव्य और संस्कृत कवियों की रचनाओं से किसी भांति कम नहीं पाते। वे इन्हें मानव मेधा की भावधारा और साहित्य के विकास में सहायक बखान करते हैं।[5]

भारत की विभिन्न भाषाओं के लोकवार्ता विदों ने इस विधा के विविध वर्गों का सुष्ठु निर्धरण कर रखा है। अंग्रेजी समालोचकों ने पहेलियों

के जिन वर्गों की चर्चा की है, उनमें से कुछ यों है– मस्तिष्क उद्वेलक, बेहतरीन, कठिन, सरल, अच्छी, मज़ाकिया, बच्चों केलिए, तार्किक, गणित संबंधी, छोटी, मध्यम, प्रौढ़ वर्ग की, वीडियो पहेलियां, मैं कौन हूं, यह क्या है?[6] इन प्रश्नों से जुड़ी हुई पहेलियां आदि।

रिवाजों से संबद्ध बुझारत परंपरा–

पहेली के माध्यम से समस्याओं का समाधान पाने वाली कथाएं भी डोगरा क्षेत्र में उपलब्ध होती हैं। एक बुढ़िया का पुत्र ऐसी ही एक कथा में पहेली के द्वारा उस राजकुमारी को ब्याहने में सफल होता है जिसे पाने में असफल रहने वाले कई राजकुमार बंदीगृह में पड़े हुए थे।[7]

पहेली का ठीक उत्तर देने के कारण लोक – कथाओं में आदर्श प्रेमी परस्पर मिल जाते हैं और कहीं–कहीं वियोगावस्था के कारण बुझ रही उनकी जीवन ज्योति पुनः जग उठती है। लोक–कथाओं में कई बार कथापात्र बुझारत द्वारा या बुझारत का ठीक उत्तर देकर अपने प्राणों की रक्षा करते भी दिखाई देते हैं।

किन्तु लोक कथाओं के संसार से बाहर समाजिक जीवन में विशेषतया विवाह संस्कार में पहेली का प्रयोग इसकी अनुष्ठानिक उपयोगिता को स्पष्ट करता है। बारात को रोक कर बुझारत पूछने की रीति की पृष्ठभूमि में अपरिचित परिवार के बुद्धिकौशल की परख का उद्देश्य भी साफ दिखाई पड़ता है। बौद्धिक परिक्षा के अतिरिक्त गृहस्थी की कठिनाइयों को समझने और उनसे पार पाने की सामर्थ्य का भी इस लौकिक परिक्षा द्वारा पता चल जाता था।

अनुष्ठानिक महत्व–

बुझारतें शताब्दियों से मानव जीवन के भिन्न–भिन्न पक्षों, अपने चौगिर्द के पयावरर्ण और मानव कल्पना के संसार को अंग–संग लिए आज के युग तक चली आई हैं। इनका संबंध मात्र मनोरंजन से ही नहीं, प्रत्युत्

मानव – समाज के अनेक संस्कारों एवं अनुष्ठानों से भी है। वेदों में बुझारत (ब्रह्मोदय) का प्रयोग ऐसे अनुष्ठान के रूप में दिखाई पड़ता है। अश्वमेघ यज्ञ में अश्व की बलि से पूर्व ब्राह्मण और ययमान दोनों बुझारतें बूझने में प्रवृत्त होते थे।[8]

पुराणों के अनुसार श्रीरामचन्द्र ने एक, युधिष्ठर ने तीन, बलि ने एक सौ तथा परीक्षित ने तीन अश्वमेघ यज्ञ किए थे। इस से स्पष्ट है कि बुझारत बूझने का अनुष्ठान उस दौर में अश्वमेघ यज्ञ सरीखे अनुष्ठानिक धर्म कृत्य का एक अनिवार्य अंग बना हुआ था।[9]

यजुर्वेद में यजमान और ब्राह्मण की ओर से पूछे गए ब्रह्मोदय का उदाहरण यों दिया गया है:–

प्रश्न – सूर्य जैसी ज्योति कौन है ? समुद्र के समान सरोवर क्या है ? पृथ्वी से बड़ा क्या है ? तौल किसका नहीं होता ?

उत्तर – ब्रह्म सूर्य जैसी ज्योति है। समुद्र के समान सरोवर स्वर्ग है इन्द्र पृथ्वी से अधिक महिमावान है। वाणी का तौल नहीं होता।[10]

बुझारत का एक अन्य सांस्कृतिक सरोकार भी है जिसका संबंध विवाह जैसे शुभ कार्य से है।विवाह के अवसर पर बुझारतें बूझने की परंपरा संसार भर में है। अफ्रीका के आदिवासी समाज में विवाह के इच्छुक व्यक्ति का विवाह बुझारत का सही उत्तर देने पर ही निर्भर करता है।[11]

मध्य एशिया में तुर्की नारी अपने होने वाले पति से कठिन पहेलियां पूछती है। नहीं बूझ पाने पर कोई छोटी सी सजा भुगतनी पड़ती है। यह प्रथा वहां शादी का एक व्यवहारिक पक्ष है।[12]

हिन्दी विश्वकोष के अनुसार भारत की भांति यूनान में भी पौराणिक कथाएं प्रचलित हैं जिन में बुझारत बूझने वाला सफल व्यक्ति ही युवती से विवाह कर पाता है।[13]

विवाह में पहेलियां बूझने की प्रथा भारत के अनेक क्षेत्रों में प्रचलित है। बंगाल में विवाह के प्रीतिभोज से पूर्व पहेलियां पूछी जाती हैं। मनोरंजन के अतिरिक्त इनके द्वारा मानसिक परीक्षा भी हो जाती है।[14]

वैवाहिक रीतियों में प्रयोग–

राजस्थान में भी विवाह के दौरान पहेलियां बूझाने की परंपरा बड़ी पुरानी है और इसका अनुष्ठानिक महत्व है।[15] भोजपुर में विवाह में 'कहवर प्रवेश' के समय स्त्री वर्ग जमाता की बुद्धि पीरक्षा और मनोरंजनार्थ पहेलियों की वर्षा कर देती हैं।[16]

छत्तीसगढ़ के मूल निवासियों में ट्टण्ला'के गौंड, प्रधान और बिरहौर जातियों के वैवाहिक अनुष्ठानों में पहेलियां बूझना एक आवश्यक अनुष्ठान माना गया है।[17]

अवध में भी वर की बुद्धि परीक्षा के लिए पहेली को एक साधन बनाया गया है।[18] विवाह के दौरान किन्नर, चौपाल, सिरमौर क्षेत्र में समस्यात्मक पहेलियां बूझने की पुरानी प्रथा है।[19]

विवाह के अतिरिक्त पहेलियों का संबंध अनेक अन्य संस्कारों से भी है। फ्रेज़र के अनुसार 'ब्रिटेनी'में दफन संस्कार के उपरांत बजुर्ग लोग कब्रिस्तान में बैठ कर बुझारतें बूझा करते हैं। दक्षिण अफ्रीका में 'वा–थोंगा' कबीले की स्त्रियां वर्षानुष्ठान में निर्वस्त्र होकर नृत्य करती और वर्षा बरसने का आहवान करके गीत गाती हैं। यदि उस समय कोई पुरुष उनके सामने आ जाए तो उसे ऐसी पहेलियां पूछी जाती हैं जिनका उत्तर सुन्नत अनुष्ठान से संबंणित अश्लील शब्दावली में देना अभीष्ट होता है। [20]

ईस्ट इण्डीज़ के मध्य सेलीवीज़ में रहने वाले कबीले फसल पकने पर एक–दूसरे से पहेलियां पूछते हैं। पहेली के सही उत्तर पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहते हैं – ''हमारा धान बढ़े और इसकी बालियां लंबी हों।[20]

महाराष्ट्र में भाद्रपद मास के दौरान नइर्त फसल के अनाज के ढेर के चौगिर्द भरली लोग ''कांबड़'' नामक अनुष्ठानिक नृत्य करते हैं। इस नृत्य के अवसर पर पूछी जाने वाली पहेलियों का संबंध मुख्यता रामायण महाभारत और शिव–पावर्ती से होता है।[21] बिहार के कुछ भागों में, महाराष्ट तथा मध्यप्रदेश के मालवा क्षेत्र में पशुधन की पूजा के त्यौहारों पर पहेलियां बूझी जाती हैं।[21]

किन्नर क्षेत्र में ''तोशिम'' के त्यौहार पर नाचने वाली युवतियां और युवक एक – दूसरे को पहेलियां भी पूछते हैं।[22]

डुग्गर में विवाह के अवसर पर पहेलियां बूझने की परंपरा रही है, जिसके अवशेष हरिजन जातियों में प्रचलित ''अड़कूनी'' बूझने की प्रथा में मिल जाते हैं। अन्य जातियों में ''छंद'' सुनाने की प्रथा अथवा ''छंद'' का प्रत्युत्तर देने की प्रथा वस्तुतः पहेली प्रथा का स्थानापन्न बनकर विकसित हुई है। किन्तु आधुनिकता के प्रभाव में यह प्रथाएं अति क्षीण हो गई हैं।

पहेली का अनुष्ठानिक उद्‌गम आदिम समाज की महत्वपूर्ण उपलब्धि रहा है। डॉ. दिनेश्वर प्रसाद पहेली को एक प्रकार का अनुकरणात्मक जादू मानते हैं, जिसके मूल में यह धारणा विद्यमान है कि जिस वस्तु का अनुकरण किया जाए वह प्राप्त हो जाती है, जैसे अच्छी फसल की कामना में लोगों का नाचना–गाना वस्तुतः पेड़–पौधों के बढ़ने–लहलहाने का वाचक है। अनावृष्टि की स्थिति में धरती पर जल फेंकना वर्षा का अनुकरण है–जिस में यह भाव निहित है कि वर्षा हो जाएगी।[23]

बुझारत वस्तुतः पुरातन संस्कारों की सुरक्षक पिटारी है जिस में किसी प्राचीन विश्वास, परंपरा या रीति–रिवाज का अनुकरण किया जाता है–जिसके मूल में अनुष्ठानिक तत्व के विद्यमान होने की प्रबल संभावना रहती है।

समाहार–

आज बहुत से संस्कार एवं अनुष्ठान अपनी परंपरागत महता खो चुके हैं। इस स्थिति के लिए दो मुख्य कारण जिम्मेवार हैंः–

1) नए युग की नई हवाओं में वह बहुत कुछ उड़कर अदृश्य होता जा रहा है जो अपनी प्रासंगिकता पर पूरा नहीं उतरता। नवीन विचारों की आमद में पुरानी परंपरा का मिट जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

2) नई संस्कृति में जबकि व्यक्ति के पास सिर खुजलाने की फुर्सत नहीं–वक्त की कमीं का कुठाराघात प्रायः परंपराओं पर ही होता है। ऐसी दशा में न तो परंपराओं को नए परिवेश में ढलने का अवसर मिलता है और न ही बदले संदर्भों में उनकी आवश्यकता ही अनुभव की जाती है।

यह मानव स्वभाव है कि जैसे–जैसे वह विकास पथ पर आगे बढ़ता है, वह अपनी सुख–सुविधा और अनिवार्यता के अनुरूप कई चीजों को अपनाता और कुछ को छोड़ता चलता है। किन्तु, परंपरा से प्राप्त ऐसे संस्कारों को प्रायः वह अपनाए रखता है जिनका संबंध उसकी आजीविका, परिवार तथा उसकी वृद्धि आरोग्य एवं कल्याण से हो। किन्तु परंपरा से प्राप्त मनोरंजन की दाय को अनावश्यक मानकर विस्मृत कर दिया जाता है।

आधुनिक संदर्भों में चूंकि पहेली की अनुष्ठानिक अथवा सांस्कारिक महत्ता का क्षय हुआ है – इस से सिद्ध होता है कि लोक–मानस के समक्ष

पहेली का मनोरंनात्मक स्वरूप ही अधिक प्रिय रहा है। इसके अनुष्ठानिक पहलू को आधुनिक परिवर्तनों ने लील लिया है।

संदर्भः–

1. हिन्दी विश्वकोष; भाग–12; पृ.–176
2. साहबलाल श्रीवास्तव; फोक कल्चर एंड ओरल ट्रेडीशन; पृ. 277
3. त्रिलोचन पाण्डेय, कुमाऊं का लोक साहित्य; पृ. 266
4. डॉ. सरोजिनी रोहतगी; अवधी का लोक साहित्य;पृ.104
5. हिन्दी साहितय का बृहत इतिहास षोडश भाग; पृ. 615
6- "Brain Teasers, Classic, Difficult, Easy, Good, Tales and Riddles, Kids, Logic, Math, Medium,Riddle for Adults, Short Riddles, video Riddles, Who Am I Riddle, What is it riddles."
7. नागबनी; सं. ओम गोस्वामी; पृ. 116–117
8. हिन्दी साहितय का बृहत इतिहास षोडश भाग; प्रस्तावना; पृ.143
9. राण प्रसाद शर्मा; पौराणिक कोश; पृ. 214
10. यजुर्वेद; अध्याय –23, पृ. 396
11. कोमल कोठारी; लोक संस्कृति अंक; जनवरी 1972; पृ. 43
12. विक्रमादित्य मिश्र; पहेली कोश; पृ. 39
13. विक्रमादित्य मिश्र; पहेली कोश; पृ. 145
14. त्रिलोचन पाण्डेय, कुमाऊं का लोक साहित्य; पृ. 222
15. साहबलाल श्रीवास्तव; फोक कल्चर एंड ओरल ट्रेडीशन; पृ. 285
16. डॉ. श्याम परमार; मालवी लोक साहित्य; पृ. 362
17. डॉ. सत्येंद्र; लोक साहित्य विज्ञान; पृ. 389
18. श्रीराम शर्मा ; लोक साहितय सिद्धांत और प्रयोग; पृ. 178
19. डॉ. वंशीराम; किन्नर लोक साहित्य; पृ. 310
20. डॉ. दिनेश्श्वर प्रसाद; लोक साहित्य और संस्कृति; पृ. 139
21. पहेली कोश; सं. विक्रमादित्य मिश्र; पृ. 36–37
22. डॉ. वंशीराम; किन्नर लोक साहित्य; पृ. 36
23. लोक साहित्य और संस्कृति; पृ.142.

ooo

डोगरी लोक कथाएं : परंपरा एवं विचारधारा

– डॉ. नीरजा शर्मा

'कथ' शब्द संस्कृत की 'कथ्' धातु से बना हुआ है। जिसका अर्थ है 'कहने योग्य' अर्थात् वह बात अथवा घटना जिसका कोई संक्षिप्त सार निकले। इन कथाओं में लोगों के भाव–विचार होने के कारण 'कथ' के साथ 'लोक' शब्द जोड़ लिया गया है। अधिकतर लोकवार्ताकारों का कहना है कि आरम्भ में जब भी कभी इकट्ठे होकर लोग बैठे होंगे तो उन्होंने अपने–अपने अनुभव एक दूसरे के समक्ष प्रकट करने के लिए किसी न किसी रूप में वाणी का प्रयोग किया होगा। जिसके फलस्वरूप लोक–कथाओं का जन्म हुआ होगा। डुग्गर में भी इस बात के कई प्रमाण मिलते हैं जैसे 'किम्भ' नामक फल को धूनी आदि लगाकर खाने के लिए तैयार करना 'कत्थ पाना' ही कहा जाता है।

लोक कथाओं की परंपरा अति प्राचीन है। लोक कथाओं का जन्म मनुष्य के जन्म के साथ ही हुआ था या फिर यह भी कह सकते हैं कि मनुष्य का जन्म लोक कथाओं की गोद में हुआ। मनुष्य का पहला विचार लोक–कथात्मक ही था। विद्वानों ने अपने–अपने दृष्टिकोण के अनुसार लोक–कथाओं की परिभाषाएं दी हैं। जिनको पढ़ने के उपरांत हम कह सकते हैं कि मानव मन से अपने आप निकलने वाली वह सारगर्भित बात जिसमें कथा तत्व की मिलावट हो, जो जन जीवन का मनोरंजन करने के साथ–साथ बढ़ाने में भी सक्षम हो तथा मनुष्य के हृदय में पीढ़ी–दर–पीढ़ी निवास करती चले 'लोक कथा' कहलाती है। लोक कथाएं मन ही मन

अपने आप ही बुनी जाती हैं। न ही कभी लिखी गई हैं और न ही पढ़ी पढ़ाई गई हैं। केवल सुनी सुनाई जातीं रहीं हैं। बुजुर्गों ने बच्चों को सुनाई और फिर उन बच्चों ने अपने बच्चों को। इस तरह से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी और फिर दूसरी से तीसरी पीढ़ी तक कथाएं चलती आतीं हैं। परंपरा से यह कथाएं हमारे जीवन के साथ–साथ चलने के कारण अपने में इतिहास की कड़ियां भी जोड़ती जातीं हैं।

डोगरी के विद्वान डॉ. गौतम शर्मा 'व्यथित' लोक कथाओं को मानव मन की सनातन सम्पत्ति मानते हैं। उनका कहना है कि 'लोक कथाएं' परंपरा से चलते–चलते समय परिवर्तन के कारण समय विशेष के रंगों से भी प्रभावित होकर युगों–युगों तक चलती रहती है।

प्रायः हर देश के लोगों की संस्कृति का मुख्य आधार एक जैसा ही होता है इसलिए यह कथाएं जहां भी पहुंचती हैं वहीं के वातावरण में ढल जाती हैं। लोक कथाओं का यह रूप देख कर श्री विश्वनाथ खजुरिया जी ने कहा है कि एक ही देश की लोक कथा दूसरे देश में जा कर वहीं के वातावरण में रच–पच जाती है। जैसे कोई लड़की शादी के पश्चात ससुराल के वातावरण में रच–पच जाती है। कुछ कथाएं अपने वास्तविक रूप में भी रहती हैं और कुछ कथाओं में जीवन के नए–नए मोड़ आने के कारण नए–नए सूत्र जुड़ते जाते हैं।

लोक–कथाएं सारे विश्व में ही सुनी–सुनाई जाती हैं परंतु भारत तो लोक कथाओं का मूल गढ़ है। लगभग सभी देशों–विदेशों के विद्वान लोक कथाओं का आरम्भ भारत में ही हुआ मानते हैं। जर्मन विद्वान वेनिफी संसार भर की लोक कथाओं का जन्म भारत में ही हुआ मानते हैं। एक और विदेशी विद्वान ने भारतीय लोक कथाओं का अध्ययन करने के पश्चात यह माना है कि कहानी कहने और लिखने की कला में भारतीय जाति से ही गुरु हैं।

विद्वानों ने लोक –कथाओं का आरम्भ वेदों में माना है। डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय का कहना है कि ''सर्वप्रथम वैदिक संहिताओं में कथाओं के बीज उपलब्ध होते हैं। '' संसार में सबसे पुराना ग्रंथ वेद है। इसमें अधिकतर ऐसे प्रसंग हैं जिनका स्वरूप कथाओं की तरह है। इन प्रसंगों की व्याख्या पुराणों में मिलती है। इस से यह सिद्ध होता है कि कथाओं का रूप पुराणों में विकसित हुआ है।

ब्राह्मण ग्रंथों में अनेक कथाओं का उल्लेख है जैसे 'शतपथ ब्राह्मण' नाम के ग्रंथ में 'उर्वशी' तथा 'पुरुरवा' की कथा। 'ऐतरेय ब्राह्मण' में 'शुनशेप' की कथा आदि। इसके उपरांत उपनिषदों में अनेक कथाएं मिलती हैं। 'कठोपनिषद' तो कथाओं का ही ग्रंथ है। 'नचिकेता' की कथा तथा 'अग्नि और यज्ञ' की कथा भी इसी ग्रंथ में मिलती है। लोक कथा साहित्य की दृष्टि से देखा जाए तो लोक कथाओं का सबसे पुराना तथा बड़ा ग्रंथ गुणाढ़य द्वारा दूसरी शताब्दी में रचा गया 'वृहत्कथा' ग्रंथ है।

पंचतंत्र को कहानियों का सबसे मौलिक तथा प्राचीन ग्रंथ माना गया है। राजकुमारों को नीति शास्त्र का उपदेश देने के लिए विष्णु शर्मा ने इस ग्रंथ की रचना की। आर्थर राइडर नाम के विद्वान ने इन कहानियों को कश्मीर की उपज कहा है। पंचतंत्र के उपरांत लोक कथाओं की परंपरा 'हितोपदेश' ग्रंथ तक पंहुची। इस ग्रंथ का मूल आधार पंचतंत्र ही है।

इसके पश्चात 'शिवदास' द्वारा रचित राजा विक्रम से संबंधित पच्चीस कथाओं का संग्रह 'वेताल पंचविंशतिका' रचा गयाहै। इसके उपरांत 'सिंहासन द्वात्रिंशिका' संग्रह रचा गया। लोक कथाओं के साहित्य में 'जातक' कथाओं का विशेष स्थान है। 'जातक' कथाओं में नीति प्रधान कथाएं हैं। उपदेश के साथ–साथ मनोरंजन की प्रवृत्ति भी इन कथाओं में पाई जाती है। इसलिए लोक कथाओं के विकास में जातक कथाओं का महत्वपूर्ण योगदान है। जैन साहित्य में बौद्ध साहित्य से भी अधिक कथाएं मिलती हैं।

इस तरह से हम देखते हैं कि वेदों से पहले लोक–कथाओं का मौखिक रूप था। लिखित रूप में लोक–कथाओं का आरम्भ वेदों में हुआ इसके पश्चात पुराणों आदि में और फिर इसके पश्चात धर्म, उपदेश प्रधान तथा मनोरंजन प्रधान कहानियों के रूप में उनका विकास होते हुए आज तक कथाएं चलती आ रही हैं। लिखित रूप में हिन्दी लोक कथाओं का आरम्भ कुछ वर्ष पहले से ही हुआ है और अभी तक लगभग सभी भाषाओं में लोक कथाएं छप चुकी हैं। डोगरी में भी विद्वानों ने अपने – अपने तौर पर कथाओं के संकलन छपवाए हैं। इन कथाओं के कुछ संकलन डोगरी संस्था और कल्चरल अकैडमी ने भी छपवाएं हैं। इन कथाओं की चर्चा करते हुए डोगरी के विद्वानों ने इन पर काम भी किए हैं। लोक–कथाएं लोक–संस्कृति की रक्षक हैं। इन कथाओं को लोक संस्कृति की आत्मा कहा गया है। लोक कथाओं में लोगों के रहन–सहन, धर्म , नियम तथा किसी इलाके की जाति विशेष के आचार–विचार आदि की तस्वीर चित्रित होती है। इस कारण जाति विशेष की सभ्यता, संस्कृति, विचारधाराओं आदि की जानकारी हम स्थान विशेष की लोक कथाओं के माध्यम से प्राप्त कर सकते हैं।

इसी प्रकार डोगरा जन–जीवन की सभ्यता, संस्कृति तथा विचारधाराओं की जानकारी प्राप्त करने के लिए डोगरी लोक–कथाओं का अध्ययन आवश्यक है। इन कथाओं का क्षेत्र बड़ा विशाल है इन्हें किसी सीमा में बांधना कठिन है। प्रस्तुत लेख का आधार सामाजिक–राजनैतिक तथा सांस्कृतिक तीन पहलुओं पर आधरित है।

सामाजिक पहलू

डोगरी लोक–कथाओं में डोगरा समाज के भिन्न–भिन्न पहलुओं का चित्रण मिलता है। परिवार का रूप–स्वरूप, परिवार के सदस्यों के आपस में संबंध, परिवार की आर्थिक स्थिति, परिवार का समाज के साथ संबंध, समाज में अलग–अलग जातियों का स्थान, उनके काम–काज,

आचार'विचार, डोगरा लोक संस्कृति, शासन व्यवस्था आदि से संबंधित लोक मानस की कई विचारधाराओं का उल्लेख इन कथाओं में मिलता है।

परिवार समाज की एक महत्वपूर्ण इकाई है। मुख्य रूप से परिवार में कम–से–कम पति–पत्नी, सास–ससुर, ननद–देवर, बच्चे एक ही घर में रहते आए हैं। घर का बुजुर्ग सदस्य मुखिया होता है। सभी सदस्य उसकी इज्जत करते हैं। इकट्ठे रहने से झगड़े भी चलते रहते हैं जिसका उल्लेख डोगरी की लोक कथाओं में बखूबी किया गया है।
गृहस्थी चलाने के लिए पति–पत्नी का आपस में प्रेम होना अति आवश्यक होता है। दोनों में कभी–कभार अनबन भी हो जाए तो एक को सहनशील होना पड़ता है। जिसके उल्लेख डोगरी लोक कथाओं में भी मिलते हैं। इन कथाओं में पति–पत्नी एक–दूसरे को सुधारने के लिए पीरों–फकीरों द्वारा बताए गए उपाय करते या फिर एक–दूसरे के साथ सख्ती करते भी बताए गए हैं।

'चतराई' नाम की एक कथा में कोई पति अपनी पत्नी की बात से दुखी होकर अपनी मां का सिर मुंडवाने के बदले अपनी सास का सिर मुंडवा देता है। और उसे गधे पर बिठा कर अपनी पत्नी के पास ले आता है। अपनी मां की दुर्दशा देख कर उसकी पत्नी अपने कहे पर पछताती है और आगे के लिए सुधर भी जाती है।

'पुट्ठ' नामक कथा में कोई पत्नी हमेशा पति के विपरीत काम करती बताई गई है। उस से दुखी होकर उसके पति ने जान–बूझकर उसको वहीं काम करने को कहना शुरू कर दिया जिसे वह उस से करवाना न चाहता हो। इस प्रकार धोखे में आ कर वह जिद्दी औरत ससुर के पिंड प्रवाहित करती हुई खुद ही डूब कर मर गई। इसके विपरीत कई पत्नियां अपने बुद्धि चातुर्य से रोब जमाने वाले पतियों को अक्ल से सुधार लेती भी बताई गई हैं। ऐसी नारियां खुद कमाई करके ऐसे पतियों

को एहसास करवाती दिखाई गई हैं कि वे केवल उन पर ही निर्भर नहीं हैं।

घर को बनाने में नारी का अधिक योगदान होता है। इसलिए डोगरी लोक कथाओं में बेटों की योग्यता के साथ–साथ बहुओं की खूबसूरती से ज्यादा उनके गुणों को महत्ता दी गई है। 'चीरतीर' नाम की एक कथा में ससुर अपनी सभी बहुओं के गुणों की परख कर अधिक गुणी बहु की ही सराहना भी करता है और उसे इनाम भी देता है। समझदार बहुओं से ही घरों की शोभा बनी रहती है। नाकाबिल बहुओं से घर बिखर जाते हैं। इसका उल्लेख भी इन कथाओं में मिलता है। वैसे तो डोगरा परिवारों में पर्दा प्रथा रही है। बहुएं ससुर से घूंघट निकालती रही हैं। लेकिन कुछ कथाओं में बेटे के जीवन और घर को सुखी देखने की इच्छा के कारण ससुर बेटे का रिश्ता करने से पहले खुद होने वाली बहु की परख–पड़ताल करते भी इन कथाओं में बताए गए हैं। यदि गरीब घर की लड़की मन को अच्छी लगे तो समधियों की गरीबी को भी नज़र अन्दाज़ कर देते हैं। उनकी इज़्ज़त बनाए रखने के लिए समाज से छुपा कर उनकी आर्थिक मदद भी करते इन कथाओं में बताए गए हैं।

डोगरी क्हावत 'कनकै उप्पर बीऽ ते माऊ उपपर धीऽ' बेटियों के स्वभाव पर मां के स्वभाव का असर होने का इशारा करती है। इसीलिए बहुओं की परख करने केलिए उनकी मां के गुणों को भी नज़र अन्दाज़ नहीं किया जाता, इन कथाओं में बताया गया है।

घर में बहुओं को इज़्ज़तमान मिलता और आवश्यक कार्यक्रमों में उनसे सलाह–मशवरा लेने के उल्लेख भी इन कथाओं में मिलते हैं। ''जित्थै सुमति उत्थै लच्छमी'' नाम की कथा में बहु की सलाह अनुसार कोई शाह देवी ''लक्ष्मी'' से घर में एकता, सुमति तथा प्रेमभाव बने रहने का वरदान मांगता है। जिसे सुनकर ''एकता, सुमति और प्रेमभाव'' की प्रतीक लक्ष्मी को हमेशा के लिए उसके घर में ही रहना पड़ता है। इस तरह से बहु की बुद्धिमता के कारण उनके घर में ही लक्ष्मी को रहना पड़ता है। इस तरह

से बहु की बुद्धिमता के कारण उनके घर में हमेशा के लिए लक्ष्मी की कृपा हो जाती है।

कुछ कथाओं में बहुएं ससुराल में घुट–घुट कर जीवन काटती हुई भी दिखाई गई हैं। ज्यादातर सास से डरी हुई बहुएं पेट भर रोटी भी नहीं खाती हुई दिखाई गई हैं। लेकिन कुछ गुणी बहुएं अपने गुणों के कारण सास के लाड़–प्यार तथा बड़प्पन का पात्र भी बन जाती हैं। कुछ कथाओं में तो सासें बहुओं की हर बात में हां से हां मिलाती हुई भी दिखाई देती हैं। चाहे वे बहुएं घर का नुकसान ही क्यों न कर रही हों। डोगरा समाज में आमतौर पर झगड़े सास–बहु में ही होते हैं। ससुर – बहु में नहीं। इस भाव को डोगरी की बहुत सी कथाओं में चित्रित किया गया है। कुछ कथाओं में नालायक बेटों के बाप दूसरों की बेटियों का जीवन कष्टमयी नहीं बनाने के कारण बेटों की शादी ही नहीं करना चाहते। बेटों की माताओं के मजबूर करने पर यदि बेटों की शादी करने के लिए ससुर तैयार भी हो जाएं तो ऐसी लड़की से ब्याह् करना ठीक समझते हैं जिसके बारे में उन्हें यकीन हो जाए कि वह लड़की उनके बेटे को सुधार लेगी।

''दलेर कंजूस'' नाम की एक कथा में बहु ससुर की कंजूस प्रवृत्ति पर नाराज़ रहती है तथा ससुर का अपने प्रति लगाव आज़माने के लिए सिर दर्द का बहाना करके कहती है कि वह तभी ठीक हो सकती है यदि भरी हुई एक मुट्ठी मोतियों का लेप उसके सिर पर लगाया जाए। बहु की बीमारी सुन कर घबराया हुआ ससुर मोती कूटने लग जाता है और कहता है कि धन को पैसा–पैसा करके इकट्ठा करना चाहिए और ज़रूरत पड़ने पर पानी की तरह खर्च भी करना चाहिए।

डोगरी लोक–कथाओं में भिन्न–भिन्न स्वभाव और समय–समय की घटित घटनाएं नज़र आती हैं। कहीं बहु–बेटे मां–बाप सास–ससुर से अलग होते दिखते हैं तो कभी फिर किसी खुशी के कारण मिल–जुल जाते हैं। डोगरा इलाके में गरीबी तथा आर्थिक साधनों के कम होने के कारण ही

यह सब कुछ होता है। वास्तविक रूप में डोगरी लोक–कथाओं के पात्र दिलों के उदार तथा प्रेमभाव रखने वाले होते हैं।

कुछ समय से डोगरा परिवार अलग भी होते जा रहे हैं लेकिन यह बड़ी खुशी की बात है कि सांझा परिवारों की प्रथा फिर से आने की उम्मीद हो रही है। एक सर्वे के अनुसार 70 फीसदी लोग संयुक्त परिवार के इच्छुक हैं। इस से पता चलता है कि लोक कथाओं में वर्णित सामाजिक परंपरा किसी–न–किसी रूप में समाज पर अमिट छाप छोड़ती है। ननद–भाभी के रिश्तों में जहां प्रेम संबंध होते हैं वहां आपस में वैर – भाव वाली दास्तान भी आरम्भ से ही चलती आ रही है जिसके उल्लेख भी डोगरी लोक कथाओं में मिलते हैं। इन कथाओं में आमतौर पर देवर बड़ी भाभियों को आदरमान देते, उनको मां के समान समझते दिखाए गए हैं। देवर भाभियों की तरफ से कराए गए व्यग्यों को सहन करते हैं तथा काम–काज करने के लिए घर से बाहर जा कर असम्भव को सम्भव करके दिखाते हैं और फिर घर लौट कर भी भाभियों को आदरमान ही देते हैं। भाभियों द्वारा किए गए व्यवहार के प्रति कोई वैर–भाव नहीं रखते उल्टा अपनी कमाई देकर उनको अमीर बना देते इन कथाओं में दिखाए गए हैं। खून के रिश्ते की तो बात ही कुछ और है इन कथाओं में बहन–भाइयों का आपस में प्यार भी दिखाया गया है और वैर–विरोध भी।

''ऋषियों की धरती'' नाम की कथा में दो किसान भाई एक दूसरे की मदद के लिए उनकी पीठ के पीछे एक दूसरे के अनाज में कुछ टोकरियां अपने–अपने अनाज की मिला देते हैं। छोटा भई ऐसा इसलिए करता है क्योंकि बड़ा भाई आर्थिक रूप से कमजोर है तथा उसका परिवार भी बड़ा है तथा बड़ा भाई यह सोचता है कि बड़ा होने के नाते छोटे भाई को अपने हिस्से से कुछ देना है। इस तरह से डोगरी लोक कथाओं में डुग्गर वासियों के आपस में खट्टे–मीठे संबंधों के बारे में बहुत से उल्लेख मिलते हैं।

डोगरी लोक–कथाओं में बेटों के जन्म पर तो खुशियां मनाई जाती रही हैं लेकिन बेटी का जन्म मां–बाप के लिए बोझ तथा चिन्ता का विषय रहा है। बेटे को जन्म देने वाली नारी को मान–सम्मान दिया जाता रहा है। इसका मुख्य कारण आर्थिक पिछड़ापन भी है। तथा लोक विश्वास भी है कि पितरों का कर्ज़ चुकाने के लिए बेटों का होना आवश्यक है। पुरुष प्रधान समाज होने पर भी नारी का समाज में विशेष स्थान होने के भी उल्लेख इन कथाओं में मिलते हैं। घर के कामकाज के अतिरिक्त औरतें रोजगार के काम करती हैं, अदालती मुकद्दमों, झगड़ों संबंधी न्याय आदि में अनमोल सलाह–मशवरादेतीं, पति की प्रेरक तथा बेकार नखट्टू पतियों को रौब दिखाती भी बताई गई हैं।

इन लोक कथाओं में सती प्रथा का भी उल्लेख मिलता है लेकिन कहीं भी नारी को सती होने के लिए मजबूर नहीं किया जाता दिखाया गया है। कुछ कथाओं में नारियां पुरुषों से अधिक बुद्धिमान दिखाई गई हैं। पत्नि रूप में लोक कथाओं की नारी कहीं मान–सम्मान में ऐंठी हुई, कहीं सती–साधवी पतिव्रता, कहीं–कहीं बदचलन धोखेबाज, कहीं शेरदिल, कहीं डरपोक आदि रूपों में चित्रित मिलती है।

मां रूप में ममता की सीर, वंश वृद्धि के लिए उत्सुक तो कहीं–कहीं देश भक्ति की प्रतीक मिलती है। मां रूप में लोक कथाओं की नारी का विशेष महत्व है। वह कई कारणों से पति का त्याग चाहे कर देगी लेकिन बच्चों को अपने से अलग करना नहीं चाहती। हर हालत में उन्हें अपनी छत्र–छाया में ही रखना चाहती है। जीवित रहते तो वह अपने बच्चों से प्यार करती ही है। परन्तु मरणोपरांत भी बच्चों की खुशहाली की कामना करना मां की ही प्रवृत्ति है। इसके विपरीत सन्तान के प्रति अन्धी ममता रखने वाली माताएं देश की खातिर ममता का बलिदान करती भी इन कथाओं में दिखाई गई हैं।

बेटी रूप में लोक–कथाओं की नारी बाप की हमदर्द, सलाह–मशवरा देती तथा ससुराल जाकर मायके का इज़्ज़तमान बनाए रखने का यत्न करती दिखाई गई है। नारी के इन रूपों के अतिरिक्त नारी का मात्रेआं (सौतेली मां) तथा फफेकुट्टन (त्रियाचरित्र) आदि रूप भी इन कथाओं में चित्रित मिलते हैं। इन कथाओं में चित्रित नारी के अनेक रूपों के कारण ही डोगरी कथाओं को नारी चरित्र का खज़ाना भी कहा जाता है।

जाति प्रथा– डोगरा समाज में जाति प्रथा आरम्भ से ही चलती आ रही है। ब्राह्मण जाति को सभी जातियों से ऊंचा माना जाता रहा है तथा सुपात्र समझ कर पूजा तक भी की जाती रही है। ब्राह्मण राजाओं–महाराजाओं के दरबार में मान–सम्मान तथा इनाम रूप में धन–दौलत भी लेते रहे हैं। सोलह संस्कार निभाते समय मंत्र–स्तोत्र आदि पढ़ कर ब्राह्मण हमारी संस्कृति की रक्षा करते आए हैं तथा दक्षिणा के रूप में लोग अपनी–अपनी हैसियत अनुसार इनको धन–धान्य देते रहे हैं। इस दान को ''पुरोहितेआई'' कहा जाता है।

कर्मकाण्ड के अलावा ज्योतिष विद्या तथा विदेसरी आदि करना भी इनकी कमाई का साधन रहा है। इस तरह से प्राप्त धन कम ही होता है जिस कारण इनकी आर्थिक दशा कमज़ोर हो रही है। जिसके उल्लेख इन कथाओं में मिलते हैं। इन कथाओं में आमतौर पर ब्राह्मण सन्तोषी स्वभाव के हैं। आवश्यकता अनुसार धन मिल जाने पर लालच नहीं करते हैं।

''चार श्लोक '' नाम की एक कथा में कोई ब्राह्मण चार सौ रुपए से अपनी आवश्यकता पूरी करने के लिए जीवन में लाभान्वित होने वाले चार श्लोक लिखता है। कोई साहुकार उस ब्राह्मण से यह चार श्लोक खरीद लेता है और इन श्लोकों के लाभकारी सिद्ध होने पर ब्राह्मण को जब एक लाख रुपए इनाम के रूप में देता है तो ब्राह्मण इन रुपयों को हाथ तक नहीं लगाता। साहुकार उस ब्राह्मण को जब वैसे ही चार श्लोक

और सुनाने के लिए कहता है तो ब्राह्मण नहीं मानता और कहता है कि उसे और पैसों की आवश्यकता नहीं है इसलिए उससे अब और श्लोक नहीं बन सकते। दूसरी ओर स्वार्थी और चालाक प्रवृत्ति वाले ब्राह्मणों के भी उल्लेख इन कथाओं में मिलते हैं जो अपनी आवश्यकता अनुसार अपने जजमानों से चीजें दान कराते हैं।

डोगरी लोक कथाओं में क्षत्रिय जाति के लोग वचनों के पक्के तथा राजशासन चलाने में निपुण, बहादुर तथा राज्य के लिए अपने प्राण न्यौछावर करते दिखाए गए हैं। इन कथाओं में वैश्य जाति के लोगों को महाजन, शाह, साहुकार आदि नाम से अभिहित किया गया है। लोक जीवन में वैष्यों द्वारा व्यापार को ही प्रमुखता देते दिखया गया है। व्यापारी अपने बच्चों के पढ़े–लिखे होने के बावजूद भी उनको सरकारी नौकरियों में नहीं लगाते बल्कि उनको अपने ही काम – धंधों में लगाने को प्राथमिकता देते हैं। व्यापारियों के बेटे व्यापार में यदि पैसा उजाड़ भी दें फिर भी बाप अपने बेटों पर गुस्सा नहीं करते उल्टा कारोबार समझने के लिए और–और धन देते दिखाए गए हैं। सूद पर पैसा देना भी साहुकारों की कमाई का एक साधन रहा है। कुछ कथाओं में तो सूद के लालच में फंसे शाह दिमागी परेशानी मोल लेते चित्रित किए गए हैं। इसके विपरीत कुछ कथाओं में शाह लोग सूद की जगह गरीब लोगों से बहुत काम करवाते दिखाए गए हैं। शाहों के कर्ज़े के नीचे दबे लोगों के पीढ़ी–दर–पीढ़ी पोत्र–पड़पोत्र तक सिर ऊंचा नहीं कर सकते। नौकर बन कर अच्छे –बुरे कई तरह के काम इनको करने पड़ते हैं। कहा भी गया है कि अति किसी भी चीज की अच्छी नहीं होती। समय की ताक देखकर यह बन्धुआ मज़दूर साहुकारों को धोखा देते भी इन कथाओं में दिखाए गए हैं। मुख्य रूप से शाहों की कंजूस प्रवृत्ति का ही जिक्र इन कथाओं में वर्णित है। लेकिन हर समाज में अलग–अलग प्रवृत्ति के लोग होते ही आए हैं।

कुछ कथाओं में साहुकारों की दानी प्रवृत्ति का भी उल्लेख मिलता है। दानी साहुकार नाम की कथा में कोई साहुकार किसी की ज़रूरत पूरी

करने के लिए अपने पास धन नहीं होने के कारण अपनी पत्नी को ही सन्दूक में बंद करके किसी के पास कुछ घंटों के लिए रख देता है।

डोगरा किसान सुबह–सवेरे भूखे ही खेतों में चले जाते हैं। सर्दियों की ठिठुरती सर्दी तथा गर्मी की तपती धूप में भी खना और पीना भूलकर दिन भर खेतों में काम करते रहते हैं। इनका खाना इनकी पत्नियां खेतों में ही पंहुचा देती हैं। यह किसान लोग ईमानदारी में ही फसल की बरकत मानते इन कथाओं में दिखाए गए हैं।

डुग्गर समाज में नाई का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इनका मुख्य काम तो बाल काटना ही है लेकिन इसके अलावा विवाह आदि तथा मृत्यु आदि पर जजमानों का मान–इज़्ज़त बनाए रखने का पूरा–पूरा ध्यान रखते हैं। ''खानदानी'' नाम की एक लोक कथा में राजा अपने बजीर के कहने पर पड़ोसी राजा को चिट्ठी –पत्र पंहुचाने के लिए नाई को कहता है लेकिन नाई चिट्ठी पंहुचाने का नतीजा अपनी रियासत की तबाही जान कर किसी भी कीमत पर चिट्ठी पंहुचाने के लिए नहीं मानता तथा राजा को स्पष्ट कह देता है कि उसने उनका सात पीढ़ियों से नमक खाया है इसलिए वह शाही खानदान की तबाही नहीं देख सकता।

इसी तरह दूसरी तरफ नाई यदि किसी की बदनामी करना चाहे तो वह भी करने में कोई कसर नहीं छोड़ता। शायद इसीलिए जजमान नाई को बजीर जी कह कर भी बुलाते रहे हैं। कुछ कथाओं में तो नाई को राजा जी कह कर भी बुलाए जाने का उल्लेख मिलता है। डोगरा विवाह शादियों में बारात तथा डोली के साथ समधियों के घरों में जाकर उनसे शगुन (लग्ग) लेते हैं। इसका भी उल्लेख डोगरी लोक कथाओं में मिलता है। समय परिवर्तन के कारण समधियों के घरों में आजकल इनका आना जाना चाहे आवश्यक नहीं है फिर भी परंपरा से चलते आ रहे रीति–रिवाज के अनुसार उनको शगुन अवश्य पंहुचा दिया जाता है।

डुग्गर वासी अपने काम को पूजने योग्य समझते हैं। घाई के लिए घास काटने से उत्तम और कोई काम नहीं है। ''घाई'' नामक लोक कथा में अपनी चतुराई से बजीर बना कोई घाई अपने खानदानी पेशे (घास काटने) को नहीं भूलता और प्रतिदिन पुराने कपड़े पहन कर खुरपे तथा द्राटी (दांती) की पूजा करता है। इन कथाओं में समाज की सभी जातियों के उल्लेख मिलते हैं। जुलाहे, राजड़े, तरखान, चमार, चारावाहे, धोबी इत्यादि सभी अपना–अपना काम करते तथा एक–दूसरे को आवश्यकता पड़ने पर साथ देने वाले दिखाए गए हैं।

राजनैतिक पहलू

किसी भी समाज का सुखी अथवा दुखी होना वहां की शासन व्यवस्था पर आधारित होता है। डोगरी लोक कथाओं में सुखी समाज का चित्रण मिलता है जिसका मुख्य कारण है राजशासन की तरफ से जनता को हर प्रकार की सुविधा का दिया जाना। कुछ कथाओं में अत्याचारी राजाओं के भी उल्लेख मिलते हैं लेकिन ऐसे राजा प्रजा से प्रभावित होकर अंततः अपना सख्त रवेईया बदलते दिखाए गए हैं। ऐसे आदर्श राजाओं के गुणों से प्रभावित होकर बिना किसी दंड आदि के बुरे लोग भी सुधरते हुए दिखाए गए हैं। प्रजा की भलाई चाहने वाले ये राजा अपनी प्रजा के चाल चलन की पूरी जानकारी रखते हैं। बुरे लोगों को कानून से नहीं बल्कि अपनी बुद्धि, चतुराई से सुधारते हैं। सुखी समाज बनाने के लिए शासक को राज्य में हो रहे अच्छे–बुरे कामों की जानकारी होनी चाहिए यह जानकारी जनता के ही भेस में जनता के साथ रहने से ही ली जा सकती है। अच्छे–बुरे हो रहे कामों की जानकारी के लिए डोगरी लोक कथाओं के राजा भेस बदल कर रात–रात भर शहर का चक्कर लगाते हैं। चोर–ठग आदि बुरे काम करने वालों को पकड़ने के लिए उनके साथ मिलकर उनकी बुराई का भेद लेते हैं और सुबह होते ही उनको दरबार में बुला कर उनसे उनके द्वारा किए हुए बुरे कामों के बारे में पूछते हैं तथा उनके द्वारा किए जाने योग्य नौकरियां देते हैं जिस से वे आगे चलकर सुधर जाते हैं।

कुछ कथाओं में चोरों द्वारा स्वयं दरबार में पेश होने पर राजा उनको माफ करके इनाम देते भी दिखाए गए हैं। इनाम के लालच में चोर–ठग आदि खुद दरबार में पेश हो जाते हैं। इन कथाओं में सदैव अच्छाई की जीत, बिना खर्चे के तुरंत न्याय की प्राप्ती, सच्च–झूठ की सही परख आदि राज व्यवस्था के गुणों का चित्रण मिलता है। ''चाण्डाल कु' न'' नाम की कथा में भीमसेन नाम का राजा न्याय करने में माहिर दिखया गया है। उसके बारे में कहा गया है कि हंस की तरह दूध का दूध और पानी का पानी अलग करना उसी का काम था।

कुछ कथाओं के अनुसार तो राज दरबार में आए हुए सभी मुकद्दमों का न्याय किए बिना राजा अन्न भी ग्रहण नहीं करते थे। यदि कभी सच–झूठ की परख नहीं होने का कारण न्याय में ढील हो जाए तो असलीयत जानने की कोशिश बराबर लगी रहती है। असलीयत जानने के पश्चात् ही न्याय किया जाता है। कुछ कथाओं में स्वार्थी राजा गलत न्याय भी करते दिखाए गए हैं लेकिन ऐसे राजाओं को न्याय करने के पश्चात् पछताना पड़ता है।

इस तरह से निष्कर्श के तौर पर हम कह सकते हैं कि डोगरी लोक कथाओं के अनुसार राजाओं द्वारा प्रजा का सुख चाहने का मुख्य कारण उनका धर्म से डरना है। ये राजा प्रजा पर टैक्स लगाना जुर्म समझते हैं। इनके लिए कमाई कम करना स्वीकार है लेकिन कर लगाना स्वीकार नहीं है। इसलिए ऐसे राजाओं की प्रजा भी तन मन लगा कर काम करने में सुख महसूस करती है। कुछ राजा मजबूरी में यदि टैक्स लगा भी दें तो कुछ समय पश्चात अपना विचार बदल लेते हैं। ऐसे राजाओं के अनुसार भलाई के काम करने वालों को कुदरत से अनोखी ताकतें मिल जाती हैं। बुरे काम करने से भले कामों से मिली हुई अनोखी ताकतों के समाप्त हो जाने का डर रहता है। इसलिए भले–बुरे काम करने से पहले यह राजा सोच विचार करते दिखाए गए हैं।

इसी तरह कुछ कथाओं में बेवकूफ राजाओं का जिक्र भी मिलता है। ऐसे राजा बिना मतलब की छोटी–छोटी बातों में फंसे रहते है। रात के स्वप्न को लेकर सारा दिन उसी की चर्चा में व्यतीत कर देते हैं उस स्वप्न का अर्थ नहीं समझाने पर बजीर को ही मरवा देते हैं। छोटी–छोटी बहसों पर रानियों को देश–निकाला दे देते हैं।

प्रो. रामनाथ शास्त्री ने भी इन राजाओं की मूर्खता को साढ़ा साहित्य 1975 के अपने लेख ''डोगरी लोक कत्थें दा राजा'' में उजागर किया है। इन कथाओं में राजाओं के चुनाव तीन आधारों पर 1. गुणों के आधार पर 2. वंश परंपरा के आधार पर 3. भाग्य के आधार पर किए गए दिखाए हैं। इस बात का समाधान कि क्या सच में बेवकूफ राजा भी होते होंगे राजाओं के चुनाव देखने के पश्चात समझ में आ जाता है कि वंश परंपरा तथा भाग्य के आधार पर ही ऐसे राजाओं के चुनाव हुए होंगे।

सांस्कृतिक पहलू– सांस्कृतिक दृष्टि से डोगरा प्रदेश का विशेष महत्व है। डोगरे आरम्भ से ही धर्मी–कर्मी तथा दान–पुण्य करने वाले रहे हैं। भाग्य पर विश्वास रखते हैं। अच्छे–बुरे को कर्मों का फल समझते हैं। धार्मिक महत्ता वाले दिन व्रत रखना, तीर्थों पर स्नान–दान करना पुण्य समझते हैं। इनका हर दिन पूजा पाठ से शुरू होता है। तथा संध्या के समय भी ईश्वर चिंतन होता है। शुभ कार्यों में विघ्न निवारण के लिए कुल देवताओं के अनुष्ठान श्रद्धा पूर्वक करना आवश्यक समझा जाता है। जिसके उल्लेख यहां की लोक कथाओं में भी मिलते हैं। अपनी जमीन में नाग देख कर एक कथा में किसान सोचता है कि कुल के नाग देवता को नहीं पूजने के दोश के कारण ही उसकी फसल खराब हुई है। मनौतियां मानने में भी डोगरे बड़ा विश्वास रखते हैं। इनकी धारणा है कि मनौतियां मानने से देवी–देवता प्रसन्न हो जाते हैं व बिगड़े काम पूर्ण कर देते हैं। मनौती पूरी होने पर देवी देवताओं के क्रोध के डर से किसी भी कीमत पर देवी–देवताओं को प्रसन्न करना आवश्यक समझते हैं।

कुम्भ स्नान का महत्व भारत के अन्य प्रांतों की तरह ही डुग्गर में भी सदियों से चला आ रहा है। गरीब लोग कुम्भ जाने के लिए कई–कई दिन पहले से ही रुपए–पैसे एकत्रित करने आरम्भ कर देते हैं। कुम्भ के अलावा पूर्णिमा, अमावस, संक्राति आदि धार्मिक महत्व के दिनों में भी तीर्थ स्नान–दान आदि करना पुण्य समझा जाता है। तीर्थों पर देह त्यागना मोक्ष प्राप्ति मानी जाती है।

स्नान–दान आदि से भी अधिक किसी ज़रूरतमंद की मदद करना बड़ा तीर्थ माना जाता है। जिसके उल्लेख डोगरी कथाओं में वर्णित हैं। पैसा–पैसा इकट्ठा करके कुम्भ स्नान के लिए जाते समय एक कथा में कोई पंडित और उसकी पत्नी रास्ते में किसी गरीब बुढ़िया जिसके तीन बेटे भूख से बेहोश पड़े होते हैं उनकी मदद करना स्नान से भी बड़ा तीर्थ समझ कर साथ ले गए सारे पैसे बुढ़िया को दे देते हैं।

साधु–महात्माओं तथा अतिथि सत्कार में भी डोगरा संस्कृति का उज्जवल पक्ष इन कथाओं में वर्णित है। गरीब लोग भी घर आए साधुओं को बिना कुछ दिए खाली हाथ नहीं जाने देते। मक्खी चूस नामक एक कथा में बहु अपने तथा पति के हिस्से की रोटी भीख मांगने आए साधुओं को दे देती है तथा खुद दोनों भूखे रहते हैं। ऐसे उल्लेख बहुत सी कथाओं में मिलते हैं। अतिथि पूजा की मानता तो हमारे डोगरा देश में बहुत मानी गई है। ''सच्चा भगत'' नाम की कथा में किसी भक्त की पत्नी घर आए हुए साधु को जब खाना परोसने लगती है तो उनके बेटे के मरने का संदेशा आ जाता है। बिना रोटी खाए साधु चला न जाए इसलिए न तो वह खुद रोता है और न ही पत्नी को रोने देता है।

दान देने तथा सदावर्त की भी डुग्गर में प्रथा चलती आई है। यहां के लोग लंगर लगाने, मंदिर सराय गौशालाएं बनवाने, कूंएं खुदवाने तथा दान आदि देने को पुण्य समझते हैं। यह दानी लोग दान दिए बिना कुछ

भी नहीं खाते। जिसके उल्लेख डोगरी लोक कथाओं में भी मिलते हैं। ''प्राह्चित'' नाम की लोक कथा में कोई साहुकार हर दिन पांच सौ रुपए तथा पांच सौ लड्डू दान देकर ही कुछ खाता है। ''ऋषियों की धरती' नाम की कथा में कोई पंडित किसी साहुकार को पुत्र होने का उपाय बताते हुए कहता है कि वह कंढी इलाके में ऐसे स्थान पर कूआं खुदवाए जो पवित्र हो तथा यहां के लोग आपस में प्यार से रहते हों।

इसी तरह से डोगरी लोक कथाओं में सुपात्र को दान देना पुण्य तथा कुपात्र को दिया हुआ दान नाश का कारण बनता दर्शाया गया है। ''प्राह्चित'' नाम की कथा में कोई बहुत अमीर साहुकार अचानक गरीब हो जाता है। इसका कारण जब साहुकार किसी ज्योतिषी से पूछता है तो वह बताता है कि उसने दान देते समय सुपात्र–कुपात्र का भेद नहीं किया था। जिस व्यक्ति को उसने दान दिया, उसने दान के रुपयों से मछलियां पकड़ने के लिए जाल बनवाया उस जाल के साथ वह रोज सैंकड़ों मछलियां पकड़ता है। उन्हीं मछलियों का पाप लगने के कारण ही उसका धन क्षीण हो गया है। सुपात्र को दान देने के महत्व के साथ–साथ यह भी हिदायत दी गई है कि दान देने के समय ही नहीं दान लेते समय भी पात्र–कुपात्र का ध्यान करना चाहिए। अच्छे व्यक्ति से ही दान लेना फलीभूत होता है।

डुग्गर निवासी अपने पुण्यों को किसी भी कीमत पर बेचने को तैयार नहीं होते। ''अपना पुन्न'' नाम की कथा में चंद्रमणि नाम का कोई साहुकार अपने धर्मात्मा बाप के मरणोंपरांत सब कुछ बेचकर समाप्त कर देता है। एक दिन उसके पास बेचने के लिए कुछ भी नहीं बचता तो वह अपने बाप द्वारा खुदवाए हुए कूएं को बेचने के लिए निकल पड़ता है। रास्ते में अपने खाने के लिए साथ ली हुई चारों रोटियां एक कुत्ते को खिला देता है और स्वयं भूखा रहता है। कुछ दूर चल कर कोई दूसरा साहुकार चंद्रमणि को अपना कोई पुण्य बेचने के लिए कहता है। चंद्रमणि कुत्ते को खिलाई हुई चार रोटियां संकल्प करके बेचने के लिए तराजू में

डालता है तथा दूसरी ओर तराजू में मोहरें डालता जाता है। लेकिन रोटियों वाला पलड़ा तनिक भी ऊपर नहीं उठता। ऐसा होतास देख कर चंद्रमणि आचम्भित रह जाता है और पुण्य का महत्व देखकर पुण्य बेचने का विचार बदल लेता है।

किसी को मेहनत का पैसा दिए बिना उससे काम करवाना, कर्ज़ नहीं चुकाना, ब्रह्म हत्या करना, लड़की के घर का खाना अथवा कुंआरी लड़की घर रखना दोष समझा जाता रहा है। ''निश्चा'' नाम की लोक कथा में एक जन्म में बेटी से दान लेने वाली मां दूसरे जन्म में बावली बन जाती है। जिसका पानी दूसरी बावली में पड़ता है और फिर बापस इसी बावली में पड़ जाता है। लेकिन बाहर नहीं निकलता। कोई साधु बताता है कि पिछले जन्म में मां ने बेटी से दान लिया था इसलिए बावली का पानी बाहर नहीं निकल रहा। ऐसे ही एक और कथा में किसी राजा की नगरी में रात को रोज आग लगती है और सुबह बुझ जाती है। इसका कारण बताते हुए साधु कहता है कि उसकी जवान लड़की कुंवारी है जिस समय रात को वह लम्बी–लम्बी सांसें लेती है तो शहर में आग लग जाती है।

डुग्गर वासी भाग्य पर विश्वास रखते हैं। कठिन यत्न करने पर भी कई बार काम नहीं बनते और कभी–कभी रुके हुए काम भी बिना परिश्रम के अपने आप बन जाते हैं। ऐसी दशा में मनुष्य का अदृष्य शक्ति में विश्वास पक्का हो जाता है। यह अदृष्य शक्ति ही होनी, भाग्य, विधाता , विद्माता कहलाती है। डुग्गर में प्रचलित विश्वास है कि बच्चे के जन्म के समय में विद्माता अपनी कलम, दवात, तख्ती लेकर बिन बुलाए ही बच्चे के भाग्य लिखने के लिए पहुंच जाती है। उसके लिखे भाग्य को कोई नहीं मिटा सकता।

इन कथाओं में भाग्य की तरफ से ही कहा गया है कि बुरे कर्मों के कारण ही मनुष्य को दुख भरे भोग भोगने पड़ते हैं। कुछ कथाओं में विधाता के लेखो को बुद्धि से बदल देने का चित्रण भी देखने को मिलता है।

''विद्माता दे लेख'' नाम की कथा में विद्माता किसी के घर में बेटा तो दे देती है लेकिन उसके लेख लिखती है कि नौ वर्ष का होने पर उसकी शादी होगी और अगले ही वर्ष उसकी मौत हो जाएगी। किसी साधु के बताए हुए उपाय अनुसार पति की मौत के समय पत्नी दरवाजे पर बैठ जाती है। विद्माता जब उसके प्राण लेने अंदर आने लगती है तो पत्नी उसके पैर छूती है। विद्माता उसे सदा सुहागिन होने का आशीष देती है। इस तरह से विद्माता को अपने द्वारा लिखे हुए लेखों को बदलना पड़ता है।

परमात्मा जब देता है तो छप्पर फाड़ कर देता है। वही सब कुछ करने वाला है। उसके घर में देर है अंधेर नहीं, ईश्श्वर पर भरोसा रखने वालों के काम में आने वाली रुकावटें अपने आप दूर हो जाती हैं आदि ऐसे बहुत से आस्था विश्वास डोगरी लोक कथाओं के भंडार में मिलते हैं।

डोगरे अच्छाई–बुराई को पिछले जन्मों में किए गए अपने कर्मों का फल समझ कर सहन कर लेते हैं तथा दूसरों की निंदा करना पाप समझते हैं। इनके विचार में किसी की बुराई करने वाला मनुष्य खुद चाहे कितना भी भक्त अथवा अच्छी नियत वाला क्यों न हो उसके अच्छे कर्म भी अगले जन्म में किसी काम नहीं आते। इनके विचार में जिसकी निंदा की जाती है उसकी तो मैल धुल जाती है। पाप का भागी निंदा करने वाला खुद ही बनता है। ''निंदेआ करने आह्ले दे मूंह मित्ती'' नाम की कथा में राजा अपने पाप कम करवाने के लिए भेस बदल कर किसी लुहार को राजा की निंदेआ करने के लिए कहता है लेकिन लुहार कहता है कि वह निंदा करके पाप का भागी क्यों बने ?

इन कथाओं में उस मनुष्य का अगले जन्म में किसी भी तरह भला नहीं होता दिखया गया है जो कभी भी किसी की अच्छाई नहीं देखता, वह मनुष्य बहुत अच्छा माना गया है जो खुद चाहे अच्छे काम नहीं कर सकता लेकिन दूसरों के गुण गाने में कभी नहीं थकता। दूसरों का बुरा चाहने

वालों को खुद ही अपने ही फेरों में तड़पते दिखाया गया है। ''अक्ली दी खेढ'' नाम की कथा में पढ़े लिखे होने के बजाय गुणी होना आवश्यक दिखाया गया है। अच्छा बोलना, लालच नहीं करना, घमंड नहीं करना, सोच समझ कर बोलना,तथा काम करना, हक तथा धर्म की कमाई करना, गुरु के प्रति श्रद्धा रखना, बड़ों की छत्र–छाया में रहना आदि कई विचारों को इन कथाओं में उजागर किया गया है।

प्राणी मात्र से प्यार करना डुग्गर लोक संस्कृति की विशेषता है। यहां पशुओं, पक्षियों, कीड़ों आदि की सेवा करना धर्म माना जाता है। डोगरी लोक कथाओं में भी जीव–जंतुओं की सुरक्षा हेतु यत्न किए जाते दिखाए गए हैं।

पर्यावरण हेतु भी इस भावना को बनाए रखने की आवश्यकता है। डोगरों का विश्वास है कि जिस घर में माल–मवेशी बंधा हुआ हो वह घर भाग्यशाली समझा जाता है। ''धर्मपुत्तर'' नाम की कथा में बच्चों द्वारा बंदर को पत्थर मारते देख कोई बूढ़ी औरत बंदर को बच्चों से छुपाती है। पक्षी पकड़ने वालों को पैसे देकर उनसे पक्षी छुड़वाने के भी उल्लेख इन कथाओं में मिलते हैं। सांप के मुंह से मेंढक छुड़वाने के लिए कोई लड़का अपनी टांग का मांस काट कर सांप को देता है। कोई राजा जंगल में लगी हुई आग से शेर का बच्चा निकाल लाता है आदि भाव इन कथाओं में बड़े ही सुंदर ढंग से चित्रित हैं।

''नाग ते शकारी'' नाम की कथा में कोई शिकारी किसी नागिन का पति वियोग सहन नहीं कर सकता। उसके पति नाग को चील से बचाने के लिए उस चील को तीर मार देता है। ''झूठें दे पितर'' नाम की कथा में मानसिंह नाम का कोई राजा पक्षियों की बड़ी सेवा करता है यहां तक कि हंसों को असली मोती भी खिलाता है। विश्वास किया जाता है कि मरने के पश्चात वैतरणी नदी पार करनी पड़ती है जिसको पार करना बड़ा कठिन होता है, जो गाय की मदद से पार की जाती है।

गाय को पेड़ा देना पुण्य समझा जाता है। ऐसी मान्यता है कि गाय दान करने से स्वर्ग मिलता है। ''जुगती'' नाम की कथा में किसी शाह के बेटे बाप को मरने से पहले कहते हैं ''आप गाय दान करो क्योंकि वेतरणी नदी पार करनी है।'' शाह गाय दान कर देता है। मरने के पश्चात धर्मराज शाह के किए हुए कार्यों को देख कर उसे नरक में फैंकने का हुकम देता है। इतनी देर में शाह की मदद के लिए गाय आ जाती है और शाह को कोई काम पूछती है। शाह कहता है कि धर्मराज को अपने सींगों पर उठा ले और धर्मराज जब उसे स्वर्ग दे तभी सींगों से नीचे उतार दे। इस तरह से शाह को स्वर्ग मिल जाता है।

गाय को घास, चिड़ियों को चावल, चींटियों को आटा डालने के कई उल्लेख डोगरी लोक कथाओं में मिलते हैं। प्राणी मात्र की सुरक्षा की भावना के कारण ही शायद हज़ारों मील साइबेरिया आदि ठण्डे देशों से पक्षी उड़ कर हमारे देश में आते हैं। इसलिए लुप्त होती जाति–प्रजातियों के सरंक्षण में हमारे देश को सारे संसार में एक खास स्थान प्राप्त है।

निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि डुग्गर के लोग धर्मी कर्मी, ईश्वर का भजन करने वाले तथा वचनों के पक्के हैं। संस्कारों में आस्था रखने वाले हैं। बिना वैर विरोध के अपने–अपने कार्यों में लीन रहते हैं। आशावादी हैं कठिनाइयों से घबराते नहीं, परिश्रम से जीत हासिल कर लेते हैं। कठिनाई के समय को भग्य समझ कर सहन कर लेते हैं। उदारशील हैं, प्राणी मात्र से हमदर्दी रखने वाले हैं। ऐसी प्रवृत्ति होने के कारण ही डुग्गर के लोग एक–दूसरे की संस्कृति में आसानी से घुलमिल जाते हैं।

ooo

डुग्गर का सिद्धपीठ श्री नृसिंह मंदिर घगवाल

– मंगल दास डोगरा

जम्मू से 58 किलोमीटर पूर्व की ओर जम्मू–पठानकोट राष्ट्रीय राजमार्ग पर घगवाल नाम का एक बड़ा प्रसिद्ध नगर आता है। यह नगर जिला सांबा का, सांबा नगर के बाद दूसरा सब से बड़ा नगर है। इस नगर का जितना भी विकास हुआ है , यह सब नृसिंह भगवान की कृपा से ही हुआ है। नृसिंह भगवान का यहां पर एक बहुत बड़ा, भव्य, प्राचीन और पौराणिक मंदिर बना हुआ है, जिस में नृसिंह भगवान की दो स्वयंभू और अद्‌भुत प्रतिमाएं और तीसरी स्वयंभू और विचित्र प्रतिमा माता अन्नपूर्णा की यहां पर स्थापित है।

नृसिंह भगवान केवल घगवाल या इसके आस–पास के गावों में ही नहीं अपितु सारे डुग्गर प्रदेश में जम्मू, कठूआ, उधमपुर, रामनगर, डुडू–बसैंतगढ़, बनी, बसोहली, रामबन, बिलावर, डोडा, भद्रवाह आदि स्थानों में भी बड़ी श्रद्धा और भक्तिभाव से पूजे जाते हैं। इतना ही नहीं पंजाब एवं हिमाचल राज्य के लोग भी समय–समय पर आकर इनके आगे नतमस्तक होते हैं। नृसिंह भगवान पंजाब, हिमाचल प्रदेश और कई दूसरी जगहों के लोगों के पूज्य और आराध्य देव हैं। और इसी गद्‌दी की मान्यता और प्रसिद्धि दूर–दूर तक फैली हुई है। सन् 1947 में पाकिस्तान बनने से पहले स्यालकोट और लाहौर से भी लोग भगवान नृसिंह के दर्शन करने के लिए यहां पर आते थे।

प्राचीन काल से यहां पर अखंड लंगर लगता चला आ रहा है। प्रतिदिन यहां पर सैंकड़ो श्रद्धालु नृसिंह भगवान के दर्शनों के लिए आते हैं और अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए प्रार्थना करते हैं। मंदिर परिसर में दस–पंद्रह साधु–संन्यासी भी सदा ठहरे रहते हैं। इन सब यात्रियों के भोजन आदि की व्यवस्था मंदिर में ही होती है। मेलों और पर्वों पर तो यहां आने वालों की संख्या हजारों तक पंहुच जाती है।

मंदिर की देख–रेख नमार्गी सम्प्रदाय के महंत प्राचीन काल से करते आ राहे हैं, जिन की इस समय सोह्लवीं पीढ़ी चल रही है। इस समय गद्दी पर महंत 1008 श्री अजय दास जी महाराज विराजमान हैं। और वे मंदिर की सुचारू व्यवस्था कर रहे हैं। यह स्थान कितना प्राचीन है इसका अनुमान लगाना तो कठिन है। महंत जी के अनुसार यह स्थान लगभग 1200 साल पहले प्रसिद्ध संत भगत सूरदास जी के गुरु 1008 श्री नरहरी दास जी ने चेताया था। संत श्री नरहरी दास जी को भगवान नृसिंह महाराज ने स्वप्न में दर्शन दिए थे। उन से पहले भी यह तपोस्थली थी।

श्री नरहरी जी महाराज ने सारी उम्र यहां पर घोर तप किया और अंत में यहां पर जीवित समाधि ली। वहीं इस मंदिर के पहले महंत हुए हैं। इनकी समाधि इस मंदिर के प्रांगन में ही है। इस पर एक प्राचीन चबूतरा बना हुआ है। इस चगूतरे पर वट, नीम, द्रांकल, रिहाड़ और गरने के पांच पेड़ प्राचीन काल से ही लगे हुए हैं। इसी चबूतरे पर हनुमान जी और धर्मराज जी की मूर्तियां भी स्थापित हैं। इस समाधी पर भगवा झंडा भी आदिकाल से लहरा रहा है। वर्तमान महंत के अनुसार श्री नरहरि दास जी वुंदावन से सलेमावाद राजस्थान से होते हुए यहां आए थे। वहां पर इस धरती को पवित्र जानकर उन्होंने यहां पर घोर तप किया और नृसिंह भगवान के साक्षात्दर्शन किये।

सबसे पहले इस मंदिर का निर्माण चंद्रवंशी राजमाता वृंदा जी ने करवाया था। जो राजस्थान के मुलतान नगर प्राचीन नाम मूलस्थान से

यहां पधारीं थीं। उन्होंने ही यहां एक मंदिर बनवाकर उसमें नृसिंह भगवान की दो बड़ी ही अद्भुत और स्वयंभू प्रतिमाएं स्थापित कीं। एक प्रतिमा नृसिंह भगवान की है और दूसरी नृसिंह अवतार की। राजमाता ने मंदिर के साथ ही पचास कनाल से अधिक भूमि पर एक पक्के सरोवर का निर्माण भी करवाया जो हमेशा पानी से भरा रहता था। तकरीबन 40 वर्ष पहले इस सरोवर में नौका भी चलती थी लेकिन अब सरोवर के चारों ओर मकान और दुकानें बन गई हैं। और पानी भी सूख गया है, जो बड़े दुःख की बात है।

जैसा पहले भी लिखा जा चुका है कि मंदिर में स्थापित दोनों मूर्तियां प्राकृतिक हैं और किसी कारीगिर द्वारा निर्मित नहीं हैं। कोई भी मूर्तिकार ऐसी प्रतिमा नहीं बना सकता। महंत जी ने बताया कि तीसरी प्रतिमा माता अन्नपूर्णा जी की है जिस का प्राकट्य आज से लगभग 150 वर्ष पहले एक दासू नामक गूजर के खलिहान में हुआ था।

प्राचीन काल से ही सारे डुग्गर–प्रदेश में और इस के आस–पास एक प्रथा चली आ रही है कि किसी भी घर में कोई खानें की वस्तु जैसे दूध, घी, फल या अन्नादि लाया जाता है तो पहले नृसिंह भगवान जी के नाम पर इस का कुछ भाग चढ़ाया जाता हैं या उनके नाम पर निकाल कर किसी को दिया जाता है। इसको स्थानीय भाषा डोगरी में ''द्याह्ली, सुच्चा और सयोडी'' कहते हैं।

मंदिर में यह चढ़ावा हिन्दू–मुस्लमान सभी चढ़ाते हैं। यदि कोई व्यक्ति किसी कारण से घगवाल मंदिर में न आ सके तो चढ़ावे की चीजें किसी अन्य व्यक्ति द्वारा मन्दिर में पंहुचा दी जाती हैं। मन्दिर के साथ प्राचीन काल से ही राजाओं ने तीन सौ एकड़ ज़मीन की जागीर भी लगा रखी थी जो खात्मा चैकदारी का नया कानून बनने पर खत्म हो चुकी है और अब केवल 200 कनाल ज़मीन ही रह गई है।

माता अन्नपूर्णा की मूर्ति से संबंधित किंवदन्ती यूं है– घगवाल से तीन किलोमीटर दक्षिण पश्चिम में एक सनूरा नाम का गांव है यहां एक मोह्ड़ा में एक दासू नाम का किसान गूजर रहता था। उसकी फसल जब खलिहान में तैयार हो गई और ''सयोडी'' निकालने का समय आया तो दासू ने इन्कार कर दिया कि ''मैं सयोडी'' नहीं दूंगा।'' इस पर बिना ''सयोडी'' निकाले पुरानी प्रथा के विपरीत अन्न के ढेर की भराई यानी नाप–तोल होने लगा। इस घटना के समय आज से कोई 150 वर्ष पूर्व सनूरा में भूतपूर्व सांसद ठा. बलदेव सिंह के कोई पूर्वज नंबरदार थे। ढेरी नापते–नापते ही दिन बीत गए लेकिन ढेरी खत्म होने का नाम नहीं ले रही थी। दासू के अंदर बाहर अन्न ही अन्न हो गया। छोटी सी ढेरी थी और दो दिन बीत गए। दो–तीन घंटों का काम था। गांव के सारे लोग इकट्ठा हो गए और इस घटना पर आश्चर्यचकित हुए। हार कर वहां सब लोगों ने भगवान नृसिंह की पूजा की और क्षमा–याचना की, दासू ने भी क्षमा मांगी और कहा कि यह सारा अन्न तो नृसिंह भगवान का ही है। वह तो अपना हक ही लेगा। इस पर यह ढेरी शान्त हो गई।

उसी अन्न की ढेरी से माता अन्नपूर्णा की यह अद्भुत प्रतिमा प्रकट हुई। इस प्रतिमा पर धरती के जितने भी अन्न हैं उनके दाने अंकित हैं। दासू गूजर ने अपने परिवार के लिए अन्न रख लिया और बाकी का सारा अन्न और माता अन्नपूर्णा जी की यह प्रतिमा लेकर नृसिंह मन्दिर घगवाल में उपस्थित हो गया और सारी उम्र नृसिंह भगवान के मन्दिर में ही रहा और माता अन्नपूर्णा जी की यह अद्भुत स्वयंभू प्रतिमा भी नृसिंह भगवान की प्रतिमा के साथ ही शास्त्रीय विधि–विधान से स्थापित कर दी गई।

पद्म महापुराण के अनुसार यहां पर ही विष्णु भगवान के चौथे अवतार भक्त प्रह्लाद का प्रजा की रक्षा के लिए और दैत्यराज हिरण्यकशिपु को मारने के लिए मूलस्थान में हुआ था। नृसिंह भगवान ने बारहां सूर्यों को धारण कर रखा है और वह ही भक्तों का अभीष्ट सिद्ध करने के लिए नृसिंह के रूप में प्रकट हुए थे। भगवान का नृसिंह अवतार हरीत ब्राह्मण के घर पर हुआ था। हरीत की पत्नी का नाम लीलावती था।

इतिहास में इस मन्दिर का वर्णन सबसे पहले प्रो. गौरी शंकर द्वारा लिखी गई पुस्तक कवि दत्त ग्रंथावली में मिलता है। कवि दत्तू भड्डू के रहने वाले थे और महाराजा रणजीत देव के दरबारी कवि थे ने लिखा है कि नृसिंह मन्दिर घगवाल में नृसिंह यंत्र की स्थापना उनके यानी कवि दत्तू के गुरु श्री सूर्या नारायण जी ने की थी। इससे यह स्पष्ट होता है कि नृसिंह भगवान का यह मन्दिर जममू के महाराजा रणजीत देव और जसरोटा के राजा रतन देव जो जम्मू के राजकुमार के मित्र भी थे ने मिलकर बनवाया था। प्राचीन मन्दिर उस समय तक जीर्ण–शीर्ण हो चुका होगा। ऐसे भव्य मन्दिर बनवाना राजा महाराजाओं का ही काम था।

मन्दिर चार फुट उंचे चबूतरे पर बना हुआ है जिसकी लम्बाई–चौड़ाई 38 फुट है। दीवारें चार फुट से कुछ अधिक मोटी हैं जो पत्थर की तराशी हुई ईंटों से चूने–सुर्खी में बनाई गई हैं। मन्दिर शिखिर शैली में न हो कर गुंबदाकार है और मन्दिर की उंचाई 12 फुट से कुछ अधिक है। मन्दिर का छत भी चूने–सुर्खी से बना हुआ है। मन्दिर के भीतर दीवारों और छत पर जसरोटा कलम में चित्रकारी भी हुई है। लेकिन अब यह नाम मात्र ही रह गई है।

मन्दिर के बरामदे में दाईं ओर महंत जी की गद्दी है औरे इसके आगे महंतों की समाधियां हैं। जिन पर महंतों के नाम लिखे हुए हैं। मन्दिर के गर्भगृह के द्वार के दाईं ओर मन्दिर की आदि निर्मात्री राजमाता वृंदा की मूर्ति दीवार के बीच जड़ी हुई है जिसका आकार 2X2 फुट है और यह काले पत्थर की बनी हुई हैं। राजमाता पालकी में बैठी हुई है और कहार पालकी उठाए हुए है। राजमाता को हुक्का पीते हुए दर्शाया गया है। पालकी के आगे–आगे राजपुत्र और अधिकारी चलते हुए दर्शाए गए हैं।

मन्दिर के आंगन में एक बड़ा चबूतरा है, जिसका उल्लेख पहले भी किया गया है। इसके साथ ही साधु–संतो के ठहरने के लिए कमरे बने हुए हैं। कुछ आगे चलकर वृंदा माता का मन्दिर है, जिसमें अष्टभुजी शक्ति

माता की भव्य मूर्ति स्थापित है। इसके आगे महाहराजा रणबीर सिंह जी का बनाया हुआ छात्रावास और पाठशाला है। मन्दिर के पीछे पाठशाला और लंगर है। मन्दिर के भीतर एक चबूतरा बना हुआ है। जिस पर राम दरबार और राधा–कृष्ण की मूर्तियां स्थापित हैं। चबूतरे के मध्य में एक चौकी पर नृसिंह भगवान, नृसिंह अवतार और माता अन्नपूर्णा की भव्य मूर्तियां स्थापित हैं। और बहुत से शालिग्राम गृभगृह की शोभा को चार चांद लगाते हैं और यह भक्तों की मनोकामना को पूरी करते हैं।

श्री सूर्य नारायण जिन्होंने यहां नृसिंह यंत्र की स्थापना की उस समय के महान गुरु, आचार्य और तांत्रिक विद्वान थे। जो दक्षिण भारत से डुग्गर–प्रदेश में आए थे और यहां वह 25 वर्ष रहे। ग्रंथावली और दत्तू की रचनाओं से लगता है कि सूर्य नारायण उत्तरवाहिनी और जम्मू के विश्वविद्यालयों में कुलपति भी रहे। उस समय जम्मू में महाराजा रणजीत देव और जसरोटा में राजा रतन देव राज करते थे। इनका शासनकाल 1730 से 1780 ई तक का है, लेकिन तरक्की और निर्माण का समय 1750 से 1780 ई. के बीच ही रहा और लगभग इसी काल में प्राचीन और जीर्ण–शीर्ण नृसिंह मन्दिर का पुनर्निमाण महाराजा रणजीत देव और रतन देव ने सूर्य नारायण जी की देख–रेख में करवाया होगा।

मन्दिर की बाईं ओर सत्संग घर बना हुआ है और इसके आगे यात्रियों और साधु महात्माओं के ठहरने के लिए कमरे हैं। प्रांगण के एक कोने में अष्टभुजा मामा वृंदा का मन्दिर है। वृंदा माता के मन्दिर के साथ ही छात्रावास है जो प्राचीन काल में पाठशाला का भाग था। बहुत देर तक, यहां संस्कृत पाठशाला चलती रही । छात्रों को यहां पर कर्म–काण्ड पढ़ाया जाता था। नृसिंह महाराज के प्राचीन मंदिर के पीछे एक खुला आंगन है, यहां पर भोजन पकाया और परोसा जाता हैं।

मंदिर में प्रवेश करने के लिए पंच द्वार थे। इन में से पहला द्वार महाराजा प्रताप सिंह जी के बज़ीर कन्हैया जी, जो घगवाल के साथ लगते

गांव ''नाहरन'' के रहने वाले थे ने बनवाया था। बज़ीर जी ने मंदिर से कोई सौ गज बाहर एक कुआं भी बनवाया था जो 150 फुट से ज्यादा गहरा है और इसका पानी कभी नहीं सूखता। कुआं और ड्योढी वजीर कन्हैया जी ने महाराज प्रताप सिंह की प्रेरणा से संवत् 1961 में बनवाए थे। द्वार भी बड़ा विशाल था और अब यह गिर गया है और इसके स्थान पर एक नया द्वार बना दिया गया है। इस द्वार से आगे दो और द्वार हैं।

इसके साथ ही वज़ीर ने घगवाल में एक बहुत बड़ा यज्ञ किया था। उसमें 125 मन पक्के चावल बने थे। यह एक सौ साल पहले की घटना है और लागों के सम्मिलित होने का अनुमान इस से ही लगाया जा सकता है।

इस यज्ञ के समय की एक घटना महंत जी ने सुनाई जो उन्होंने अपने गुरुओं से सुनी थी। हुआ यह कि एक कैदी कठुआ से जम्मू ले जाया जा रहा था। दरोगा इसको जम्मू ले जा रहे थे। रात को इनको कैदी सहित घगवाल में रुकना पड़ा। यह बंदी निर्दोष था। रात को इसने नृसिंह भगवान का स्मरण किया। नृसिंह भगवान ने वज़ीर को स्वप्न में कहा कि कल तुम्हारे यहां एक बंदी आएगा उसे छोड़ देना। दूसरे दिन बंदी ने यज्ञ देखने की इच्छा प्रकट की। बंदी को वज़ीर कन्हैया के सामने प्रस्तुत किया गया। उन्होंने तुरंत बंदी को छोड़ देने की आज्ञा दी और कहा कि यह नृसिंह भगवान की इच्छा है।

प्राचीन काल से नृसिंह भगवान को भोग देसी घी में बने खाने से ही लगता है। एक दिन मंदिर में एक कनोत्रा परिवार दर्शनों के लिए आया और उन्होंने अपना भोजन आप बनाया। भोजन डालडे घी से बनाया गया। इन्होंने भोग लगवाने की इच्छा ज़ाहिर की। पुजारी के रोकने पर भी वह नहीं माने और डालडे में बने खाने से ही भोग लगाने के लिए थाल सजाया गया। अभी कनोत्रा थाल सजा ही रहा था कि वहां थाली में एक नाग आकर बैठ गया। यह नाग उतनी देर थाली में बैठा रहा जब तक नृसिंह

भगवान को भोग नहीं लगाया गया। मंदिर में सभी ने क्षमा याचना की। जो भी श्रद्धालु यहां आकर सच्चे मन से भगवान से कोई प्रार्थना करता है तो असकी इच्छा जरूर पूरी होती है।

सारे डुग्गर–प्रदेश से श्रद्धालु यहां दर्शनों के लिए आते हैं। पद्म महापुराण में लिखा है कि 12 सूर्यों को धारण करने वाले नृसिंह भगवान भक्तों का अभीष्ट सिद्ध करने के लिए किसी महात्मा नृसिंह के रूप में प्रकट हुए थे।

नृसिंह धाम घगवाल में लगने वाले पर्व एवं मेले आदि उत्सव इस प्रकार हैं–

1. **नृसिंह चतुर्दशी–** यह उत्सव वैशाख शुक्ल चतुर्दशी को मंदिर में ही मनाया जाता है। इसी दिन चतुर्थी में मूलस्थान में नृसिंह भगवान प्रकट हुए थे और उसी दिन उन्होंने दैत्यराज हिरणकशिपु को अपने नखों से अपनी जांघों पर रख कर मारा था और भक्त प्रह्लाद की रक्षा की थी। इस दिन मंदिर में विशेष पूजा–अर्चना होती है। पद्म महापुराण में इसका सारा महत्व लिखा हुआ है।

2. **कृष्ण–जन्माष्टमी–** यह मेला भाद्रपद मास की कृष्ण पक्ष की अष्टमी के दिन लगता है और अमावस तक आठ दिन तक चलता है। अष्टमी की रात को भगवान कृष्ण की विशेष पूजा होती है। लोग दिन भर व्रत रखते हैं। बहुत से लोग निराहार व्रत रखते हैं और रात को चंद्रमा के दर्शन करके पूजा–अर्चना के बाद ही फलाहार लेते हैं।

   इस व्रत को स्थानीय भाषा में ''ठागरें दा बरत'' भी कहा जाता है। दूर–दूर से लोग आधी रात तक मंदिर में ही

कीर्तन करते रहते हैं और चरणामृत लेकर अपने–अपने घरों को जाते हैं।

यहां पर बना हुआ सरोवर सदैव पानी से भरा रहता है। बाहिर से आए हुए लोग ग्रगा जल की तरह सरोवर का जल अपने घरों को ले जाते थे। मेले में अस्थाई बाजार भी लगता है, जिस में मिठाई, कपड़े, खिलौने, मनिहारी आदि की दुकानें भी सजती हैं। मेले के दौरान काफी चहल–पहल रहती हैं और दंगल का आयोजन भी होता है।

3. **दशहरा–** यह मेला असूज के नवरात्रों में शुरू होकर विजयादशमी तक रहता है। रात को रामलीला होती है। विजय दशमी के दिन रावण, मेघनाद और कुम्भकर्ण के पुतले जलाए जाते हैं और रात को राजतिलक होता है। दस दिन बड़ी रौनक होती है। झांकियां भी निकाली जाती हैं।

4. **मेला रथ खड़ा–** यह मेला 13 पौष को हर साल लगता है। प्राकृतिक नियमानुसार इस दिन सबसे लम्बी रात होती है और दिन सबसे छोटा। इसके बाद दिन बढ़ने लगते हैं । दूर–दूर से लोग यहां आते हैं। समान्य सामान की अस्थाई दुकाने भी सजती हैं। मन बहलाने के खेल जैसे हिंडोले, और निशानेवाजी के अतिरिक्त रामनगर, भद्रवाह, किश्तवाड़ और बनी के बने हुए कंबल, पट्टू और लोइयां आदि भी बिकती हैं।

इसके साथ ही गर्म कपड़ों की भी काफी बिक्री होती है। रात को लोग जगह–जगह गीत गाते हैं। अब से कोई तीन सौ साल पहले इस मेले में एक बहुत बड़े यज्ञ और लंगर का

आयोजन भी होता था। और तमाम लोग वहीं खाना खाते थे। लेकिन आजकल इतना बड़ा यज्ञ नहीं होता।

5. **होली और होलिका दहन–** होलिका दहन की प्रथा तो नृसिंह अवतार के समय से ही चली आ रही है। पुराणों की कथा अनुसार दैत्यराज हिरण्यकशिपु की एक बहन थी जिसका नाम होलिका था। उसने भगवान से आग में न जलने का बरदान प्राप्त किया हुआ था।

हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को मारने के लिए एक षड़यंत्र रचा। होलिका प्रह्लाद को लेकर चिता में बैठ गई। जब चिता को आग लगाई गई तो हुआ उल्टा, होलिका जल गई और प्रह्लाद बच गया।

इसके उपरांत त्रेता युग में भगवान श्री कृष्ण ने खूब होली खेली थी। यह पर्व बसंत ऋतु के आने का भी संकेत देता है। मंदिर में और सारे घगवाल में जमकर होली खेली जाती है। और पूर्णिमा के दिन होलिका दहन किया जाता है। यूं तो डुग्गर प्रदेश में नृसिंह भगवान के बहुत सारे मंदिर हैं लेकिन इस मंदिर की शोभा और महानता अलग ही है। इसीलिए इसे नृसिंह भगवान का सिद्धपीठ और पवित्र तीर्थ माना जाता है।

ooo

नाग संस्कृति और कश्मीर

– अवतार कृष्ण राज़दान

कश्मीर के विषय में कहा जाता है कि यहां जिन लोगों ने पहले पग पसारे हैं, उनका नाम नाग है और सबसे पहले इसका उल्लेख यहां के सांस्कृतिक इतिहास नीलमत पुराण में आया है और संस्कृतियों में सबसे पहले नाग संस्कृति पनपी है। किन्तु ये नाग थे कौन? अब तक कोई विद्वान या चिंतक इनकी निशानदेही करने में सफल नहीं हो पाया है और इनकी कहानी मिथ और देवमाला तक ही सीमित रही है। इनका मानव के रूप में होने का कोई स्पष्ट प्रमाण कहीं से नहीं मिला है। कहते हैं कि ये मानव के रूप में सर्प थे कुछ लोग यह राय रखते हैं कि ये असल में मानव ही थे जो असाधारण शक्ति के धनी होने के साथ–साथ कबाइलियों जैसा स्वभाव रखते थे। कइयों का कहना है कि ये कश्यप ऋषि की वंश परंपरा से संबंध रखते थे और उनकी बेटी ने इनको विशेष रूप से घाटी में शरण दी थी।

कुछ विद्वान इस बात पर बल देते हुए कहते हैं कि यह जाति कश्मीर के आस–पास और इसकी हिम–मंडित, पर्वतीय चोटियों पर रहती थी और जब कश्यप की प्रार्थना से, सरोवर से पानी उतर गया और भूमि की तह शुष्क होकर दिखने लगी, तभी ये खानाबदोश के रूप में, यहां आ कर बसने लगे। इन सभी तथ्यों को सामने लाकर इनके संबंध में कोई ठोस या विश्वास करने योग्य जानकारी नहीं बनती। इसलिए इनके विषय में कुछ कहना कोई ठोस प्रमाण नहीं रखता, जबकि इनका यहां के प्राचीण ग्रन्थों में स्पष्ट उल्लेख है और इस बात को भी नकारा नहीं जा सकता कि हमारा प्राचीण इतिहास भी इन्हीं ग्रन्थों के उल्लेख का स्वरूप है किन्तु

जहां तक इनके आवास के वैज्ञानिक प्रमाण का संबंध है, वह नहीं के बराबर हैं।

नाग जाति की पहले कश्मीर में, ठहरने वाले लोगों में गणना क्यों की जाती है ? इस जन जाति को ऐसा दर्जा क्यों नहीं दिया जाता जो बाहर से पलायन करके यहां आए और समय–समय पर बसकर यहीं रह गए, इनके संबंध में यह भी वाद–विवाद का विषय बन सकता है। किन्तु यह बात भी ध्यानोचित है कि इन लोगों का यहां की संस्कृति का सूत्र जोड़ने में अनुपम योगदान रहा है। इसमें शक नहीं कि नाग–जाति ने सबसे पहले, इस धरती पर कदम रखे हैं सही तौर पर प्रमाणित नहीं होती कि ये ही यहां के प्राथमिक बसनीक हैं। यदि हम इसी को सही मानेंगे तो यहां यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि ये आखिर कहां से आए हैं या इनका अपना असली वतन कहां था ? इसमें कोई संदेह नहीं कि अब तक इस विषय पर काफी शोध हुआ है किन्तु खेद इस बात का है कि किसी स्थानीय शोधकर्ता ने अभी तक इस पर कोई विशेष रुचि नहीं दिखाई है।

इसके विरुद्ध इस विषय पर शोध उन योरुपीय विद्वानों ने किया है जो इस धरती के प्रशंसक बनकर इसकी प्राचीन संस्कृति के मूल को खोजने के उत्सुक रहे हैं। इस संबंध में उन्होंने जो भी तथ्य इधर–उधर से समेटे हैं और उसी को आधार मानकर जो भी इन्होंने कहा है, उससे पाठक या जानकार सहमत नहीं। इसका मुख्य कारण यह भी हो सकता है कि कश्मीर की भूगौलिक स्थिति जाने बिना इन्होंने इनके बारे में जो भी कहा है, वह सब अनुमान के सिवाय कुछ नहीं लगता, फिर भी इन्होंने इस संबंध में जो कार्य किया है, वह प्रशंसनीय है और हर पाठक या जानकार को इसी पर संतोष करना चाहिए।

कल्हण कृत राजतरंगिणी कश्मीर का मौलिक इतिहास माना जाता है किन्तु यहां भी इन्होंने नाग जाति के संबंध में सही जानकारी नहीं दी है। इसका प्रमुख कारण है कि उसने अपने इतिहास की रचना तरंगों से

शुरू की है जिसमें प्राचीन ग्रन्थों के सूत्र भी शामिल हैं। इनके संबंध में इससे ठोस जानकारी प्राप्त नहीं होती जिससे पाठकों को संतुष्टि मिल सके। इसके विपरीत वह अपनी इस कृति में इससे पहले इतिहासकारों द्वारा रचित अन्य इतिहास को ध्यान में रखकर जन–जाति के संबंध में कई कहानियों का उल्लेख करते हैं। यही हासल अन्य भाषाओं में लिखित कश्मीर इतिहास पर चरितार्थ होता है। इनमें भी कोई ऐसी बात नयी नहीं है जो पाठकों को पचे बहरहाल हम कल्हण की राजतरंगिणी से ही शुरू करें जिसमें इन्होंने कहा है कि कश्मीर मात्र वह भू–स्थल है जिसकी रक्षा नागों के तीन देवता करते हैं जिनका नाम है नील, सखा और पदम, इन पर यहां के लोगों को श्रद्धा है। इनका नाम आदर से लिया जाता है और पूजा की जाती है। यह क्रम आज भी जारी है। कश्मीर में इनका शासन करने का अपनाक्षेत्र नियत है। हिन्दुओ की शासनावधि में लोग अपने इष्ट देवता नाग को मानते थे जो राजा से भी बढ़कर माना जाता था।

यहां एक और आवश्यक बात पर ध्यान दिया जा सकता है और वह है यदि हमारा यही विश्वास है कि नाग यहां के असली व प्रारंभिक वासी रहे हैं, जबकि नाग पूजा का यहां महत्व क्यों नहीं ? इसका क्या कारण हो सकता है ? इस लोक–जाति की पहचान करने से यह एक और सवालिया निशान छोड़ता है जो इस विषय पर काम करते हैं। वस्तुतः नाग पूजा सारे भारत में आम है और इनसे संबंधित कई मंदिर यहां विद्यमान हैं और नाग पंचमी के दिन इनकी विशेष रूप से पूजा का आयोजन किया जाता है किन्तु कश्मीर में इस तरह की विधि देखने में नहीं आती।

इसका प्रमुख कारण यह भी हो सकता है कि यहां के लोग इस जीव को देवता इसलिए मानते हैं क्योंकि यह इनके धान के खेतों को क्षति से बचाने के लिए चूहों को मार कर खाता है। इतना ही नहीं, वे नाग को अपनी और अपने घर–बाहर की सुरक्षा के तौर पर लेते हैं। भगवान शिव ने भी अपने बचाव और सुरक्षा के लिए वासुकि नाग को गले में लटकाया था। किन्तु कश्मीर का आम जन नाग पूजा को कोई महत्व नहीं देता या कोई खास दिन इसके लिए सुनिश्चित नहीं रखा है। एक सर्द क्षेत्र

होने के कारण, यहां कुछ छोटे–छोटे सर्पों के अतिरिक्त कोई बड़ा नाग या सर्प देखने को नहीं मिलता है। छोटे सर्प बड़े–बड़े गोलाकार पत्थरों के नीचे छिपे रहते हैं जो इंसान को काटते नहीं हैं। इस सब को देखकर क्या कारण हो सकता है कि कश्मीर को नागों की जन्म भूमि कहा जाता या इस धरती के आदि वासी माने जाते यह एक गम्भीर विषय है जिस पर उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर प्रकाश डालना उचित रहेगा।

कश्मीरियों के लिए नाग का मतलब सर्प से नहीं बल्कि ये नाग जल कुण्ड, दरिया, नदी–नाला आदि के किनारे से जोड़ते हैं जिससे साफ–शफाफ ताजा पानी हो। जीवन जल पर निर्भर करता है अन्यथा मनुष्य जीवित नहीं रह सकेगा। वर्तमान युग में जब इंसान चांद और बृहस्पति क्या, अन्य तारों पर पंहुचने की कोशिश करता है तो उसकी पहली प्राथमिकता यही रहती है कि कहीं से पानी मिले यह स्वभाविक है कि जहां कहीं भी पानी है वहां जीव–जन्तु भी मिलते हैं।

यह एक वैज्ञानिक सत्य है। इसी को आधार मान कर जब घाटी का पानी उतर गया हो तो किसी नस्ल के लोग, जिनमें नागों का नाम सर्वोपरि आता है, ने दरिया के किनारों पर जल–कुण्ड चश्में, झील आदि के किनारे पर पनाह ली होगी क्योंकि जल ही जीवन है। इनके लिए भी जल का उतना ही महत्व था जितना कि आजकल के इंसान के लिए है। शायद तभी से यहां के लोग जल के आधार को नाग कह रहे हों। इनका नाम भी इसी लोक जाति के नाम पर पड़ा होगा।

यहां किसी भी जल–कुण्ड को लोग नाग कहते हैं या साफ–सफाफ पानी से भरा चश्मा हो, उसको भी नाग कहते हैं। इस से यह बात सही लगती है कि कश्मीर में पहले रहने वाले लोग जिनको नाग कहा जाता है, ने शताब्दियों पहले दरिया के किनारों पर जल–कुण्ड के आस –पास झील या चश्मों के किनारों पर ताज़े पानी के लिए पनाह ली

होगी। यह दुर्लभ उदाहरण हो सकता है किसी जन जाति के अस्तित्व में आने का जिसने सबसे पहले यहां आश्रय पाया हो।

जैसा कि मैंने पहले ही कहा है कि योरुपी विद्वानों ने कट्टीर में नाग जाति को सर्प के रूप में सिरे से नकारा है और ये इनको हमारी तरह मानव कहते हैं। किन्तु जो इन्होंने कहा है, उसको शत प्रतिशत सही ठहराना ठीक नहीं रहेगा। यहां ऐसे ही योरुपी विद्वानों की राय लेकर मैं अपने निजी विचार सामने रखने की कोशिश करूंगा ताकि प्रस्तुत विषय की तह तक पंहुचा जाए।

फरगोसन के अनुसार नाग बस्तुतः सर्प नहीं थे बल्कि ये मानव थे और सर्पों की पूजा करते थे। इनका मूल वस्तुतः तूरानी नस्ल से था जो भारत के उत्तर में पाया जाता है और जिनको बाद में आर्यों ने परास्त किया। यह एक ठोस और बजनदार विचार लगता है जो किसी योरुपी विद्वान का है। इनका कहना किसी हद तक सही है। नाग को सर्प न मानकर, इनको मानव का दर्जा देना इस बात की ओर स्पष्ट संकेत है कि यह यहां किसी दिशा से आकर बसे हैं। किन्तु इनके इस विचार से दो बिंदु केंद्रित होते हैं। एक यह कि नाग किसी तूरानी नस्ल से संबंध रखते हैं जो भारत के उत्तर में रहते थे, स्पष्ट और साफ नहीं लगता है, वजह यह है कि कट्टीर के उत्तर में इस जन जाति के अवशेष कहीं भी नहीं मिलते। यदि ऐसा होता तो यहां नाग पूजन का प्रचलन अवश्य होता। हमारें विक्रमी कलेण्डर में इस विषय पर कोई निश्चित दिन नियत नहीं है।

वस्तुतः जब मध्य एशिया से यहां आर्य आए वह दो भागों में बंट गए, उनका पहला दल कट्टीर में बसने लगा। दूसरा बड़ा दल भारत के सारे क्षेत्रों में फैल गया और विशेषतया इसके उत्तरीय क्षेत्रों में जो आर्य कट्टीर में बसे उन्होंने नाग को देवता के रूप में स्वीकार न करके, नाग पूजन को सिरे से नकारा। यहां तक कि इन दोनों की शत्रुता की दीवारें खड़ी होकर आपस में कई बार भिड़त भी हो गई। इसके विरुद्ध जो आर्य

भारत के अन्य क्षेत्रों में फैल गए उन्होंने नागों को रक्षक के रूप में, भगवान का दर्जा दिया इस तरह से ये नाग को पूजने लगे।

इस संबंध में एक जोरदार उदाहरण पड़ोसी राज्य हिमाचल प्रदेश का है, जहां किसी समय नाग की पूजा राजा करता था जिसके साथ आम लोग भी भाग लेते थे। यही कारण है कि अलमोरा और पिथौरागढ़ कसबों में हमें कालीनाग, धौलीनाग, किशानाग, विशनाग, दमरीनाग, वासुकिनाग, और सुंदरीपनाग मिलते हैं। जिनके साथ एक मंदिर भी जुड़ा हुआ है और लोग हर दिन नाग को देवता के रूप में पूजते हैं। विशेषतया नाग पंचमीं के दिन, यहां श्रद्धालुओं की एक बड़ी भीड़ जमा होती है। यहां पर यह बात भी उल्लेखनीय है कि इन मंदिरों में किसी देवी देवता की मूर्ति के स्थान पर नाग या सर्प की मूर्ति देखी जाती है।

भारत के उत्तर में यह एकमात्र राज्य है जहां नाग को सर्प के रूप में, या रक्षक के रूप में श्रद्धा के साथ पूजा जाता है, अन्यथा इस तरह का कोई अन्य उदाहरण कहीं नहीं मिलता, यह एक महत्वपूर्ण बिंदू की ओर संकेत करता है और वह है कि जो आर्य भारत में प्रवेश कर गए थे, वह नाग को मानव का दर्जा नहीं देते थे। उनके लिए नाग केवल सर्प था जबकि कड्डीर में दरिया का रुख दूसरी ओर मुड़ता है। कश्मीर में जिस लोक जाति को नाग कहते हैं वह वस्तुतः कबाईली थे और उनकी आदतें वही थीं जो खानाबदोश लोगों की होती हैं।

किसी ओल्डहस नामक दूसरे योरुपी विद्वान के अनुसार नाग वह लोग थे जो सूर्य की पूजा करते थे और एक दूसरे के साथ संस्कृत में बात करते थे। किन्तु उनके सिर के ऊपर सर्पों जैसी फुगनी होती थी। इनका असली घर टेकशिला था। इनके कहने में भी थोड़ा सा दम है। इस आशय से कि ये दरिया के तटों पर रहा करते थे सूर्य जो सभी को गर्मी देता है , स्फूर्ति का संचार करता है, इनको दिन में ही दिखाई देता है, इस बात का प्रतीक माना जाता है कि इसी को ये भगवान मानते थे और जीवन

दान के रूप में भी स्वीकार करते थे, किन्तु जहां तक इनके संस्कृत बोलने का संबंध है, वह सही नहीं लगता। वस्तुतः भाषा का इस्तेमाल इंसान ने सातवें मनवन्तर में किया है। इसलिए यहां किसी भाषा की बात करना हास्यस्पद सा लगता है।

नाग खानाबदोश और कबाईली थे। उनका केवल एक ही उद्देश्य होता था कि वह किस तरह किसी जानवर का मांस खाकर पेट भर लें। वे सामाजिक तौर पर उन्नतशील नहीं थे, जैसा कि हम आजकल के मानव को देखते हैं। हां, यह बात सही लगती है कि इन लोगों की सर्प –प्रकृति रही हो और इनके सिर पर विषैले फन का उल्लेख हमें नीलमतपुराण में भी मिलता है और अंत में इस योरुपी विद्वान ने कहा है कि टेकशिला इनका असली वतन है। इस विषय पर भी कुछ नहीं कहा जा सकेगा, किन्तु एक तथ्य से इसका थोड़ा सा वनज इसलिए बढ़ता है, क्योंकि एक और योरुपी विद्वान कनिघम को यहां ऐसे प्राचीन सिक्के प्राप्त हुए हैं, जिन पर नाग का चित्रण मिलता है और इन पर प्राचीन ब्रह्मी लिपि में कुछ लिखा हुआ है। ये प्राचीन सिक्के पंजाब में प्राप्त हुए हैं जो इस समय पाकिस्तान का अंग है। यह वही स्थान हो सकता है जिसको आजकल टेकशिला कहते हैं।

मेरा विचार है कि यह किसी हद तक सही हो सकता है क्योंकि तक्षक का विकृत रूप तक्षुक हो सकता है या वह जानवर जो योद्धा हो, दूसरों को तकलीफ पंहुचाने वाला हो। जिसके अंतर्मन में खोट होता है। तक्षशिला तक्षक का विकृत रूप हो सकता है या जो हर किसी का हानिकारक हो। क्या पता यही अपने अन्य साथियों के साथ कश्मीर में प्रवेश कर गया हो। किन्तु टेकशिला को नागों की जन्मभूमि कहना ठीक नहीं है। हां, यह भी इनके रहने की एक जगह रही हो, इस बात को नकारा नहीं जा सकता। फिर भी इस बात की एक अलग कहानी से पुष्टि होना स्वभाविक सा लगता है।

कहानी महाभारत काल की है। पाण्डवों के नायक अर्जुन और उसके सलाह्कार व मित्र श्रीकृष्ण ने खण्डवा के सारे जंगल को अग्नि के

भेंट कर दिया जो किसी समय नाग जाति के आश्रय का मुख्य स्थल रहा था, जिनका नायक तक्षक था। जब जंगल को आग लगाई गई, उसके मित्र इंद्र ने आग की लपटों को बुझाने के लाख यत्न किए किन्तु वह असफल रहा। दुर्भाग्य से तक्षक उस समय वहां मौजूद नहीं था। उस समय वह कुरुक्षेत्र में था। उस समय बेटे की तपस्या से बचकर निकला। यह घटना प्राक्–ऐतिहासिक काल की ओर संकेत करती है कि सब जातियां आपस में लड़ती थीं।

इस बात की ओर भी संकेत मिलता है कि उस समय शायद खाण्डवा उन लोगों को अपने क्षेत्र में नहीं रहने देते थे जो राक्षसी प्रवृति के होते थे। शायद यही कारण हो सकता है कि उस समय तक्षक ने तक्षशिला को अपना स्थाई स्थान चुन लिया हो और आश्रय के तौर पर वह अपने परिवार के साथियों के साथ रहा हो।

इस संबंध में महाभारत की एक और कहानी जुड़ी हुई है। जैसा कि कहा गया कि तक्षक का स्वभाव विनाशकारी था। खण्डवा को आग की भेंट चढ़ाने का बदला लेने के लिए उसने अर्जुन के पोते परीक्षत के घर में घुस कर, उसको काटकर मारा। और बाद में महल को आग के ढेर में बदल कर वहां से टेकशिला वापस आ गया। इस संबंध में तीसरी घटना परीक्षत के बेटे जन्मजय के अपने बाप का बदला लेने के लिए तक्षशिला पर हमला करने, जिसमें उसने नाग जाति के कई लोगों को युद्धबंदी बनाया और देश में नाग मारने का आदेश दिया, उसने सारे नागों को हस्तिनापुर लाया उस समय तक्षक कहां थे, इसका उल्लेख कहीं नहीं मिलता।

इसके विरुद्ध यहां यह बात साफ लगती है कि उस समय यह जन–जाति आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान तक जा सकती थी, और जो स्थान उनको अच्छा लगता था, वहीं यह आश्रय लेते थे। इसी के अंतर्गत कश्मीर घाटी भी आती है। और यहां आकर, इन्होंने जहां कहीं

पनाह ली, वहां सबसे पहले इनके विरुद्ध कोई शत्रु नहीं था। यहां सारी जगह खुली थी और इन्होंने इसको चुनकर अपने रहने योग्य समझा, इतना ही नहीं इनका डेरा जमाने के बाद ही यहां के पहले बसनीक माने गए। इसी को आधार मान कर मशहूर विद्वान बेनर्जी नाग जाति के लोगों को, उन खतरनाक राक्षसों की श्रेणी में गिनता है, जिनका फुंगीदार शिर था और रीड़ की हड्डी असुरों जैसी थी।

नाग जाति के पतन के बाद यहां असुरों का वर्चस्व भी समाप्त हो गया। यह किसी हद तक इस तरह भी सही लगता है कि कश्मीर में आर्य के प्रवेश के बाद यहां राजनैतिक गतिविधियों का एक नया वातावरण शुरू हो गया और शनै–शनै बचे हुए नाग जाति के लोगों ने इस परिवर्तन को स्वीकार कर लिया और इस तरह से इनका आधिपत्य खत्म हो गया, किन्तु इससे यहां की नाग संस्कृति पर कोई आंच नहीं आई बल्कि यह विषय अधूरा होकर भी एक खुली किताब है।

नीलमत पुराण के अनुसार कश्मीर में 603 नाग कबीलों ने प्रवेश किया था जो पहले आसपास की पहाड़ियों पर रहते थे। यह सरोवर से पानी उतरने की बात है। नाग कबाईली थे , खानाबदोश थे, मीलों तक पैदल चलने वाले जीव थे। वे साधारण मानव थे किन्तु पिशाचों के शत्रु थे जो दूसरी ऐसी ही खतरनाक जन–जाति थी, जिसने नागों के साथ प्रवेश किया था।

नाग संस्कृति के साथ कई कहानियां जुड़ी हुई हैं जो इस प्रकार हैं–

(क) दामोदर का सर्प बनना – कश्मीर इतिहास में दामोदर राजाओं की पहली श्रेणी में आते हैं। उसके शहर की राजधानी का नाम है दामोदर उडर या करेवा, जहां आजकल अन्तर राष्ट्रीय हवाई पट्टी है। कहते हैं कि एक दिन सुबह–सवेरे नित्य कर्म से निपटकर, जब वह

स्नानादि कर रहे थे तो उनके पास दो ब्राह्मण दक्षिणा मांगने आएं। दमोदर ने उनको ठहरने को कहा ताकि वह नित्य कर्म से निपट ले। किन्तु ब्राह्मणों ने उनका कहना नहीं माना। दामोदर भी अपने कहे पर अटल रहे। राजा का इस तरह का व्यवहार देख कर, ब्राह्मण हद से ज्यादा क्रोधित हो गए और उन्होंने उसको सर्प बनने का शाप दे दिया, किन्तु इसके साथ ही कह दिया कि यदि कोई साधु या सतपुरुष तुम्हारे कान में भागवत की कथा कहेगा तो तुम फिर मनुष्य बन जाओगे। किन्तु इस तरह की कोई घटना नहीं हुई और दामोदर मनुष्य योनि में न आ सका।

(ख) नरपुर का विनाश – कहा जाता है कि नर एक प्रतापी राजा था जो विजेश्वर पर राज करता था। यह शहर वितस्ता के तट पर बसा हुआ था। राजा ने उसका नाम बदल कर अपने नाम पर नरपुर रख लिया था। उनके इस शहर में शिशिर दास नामक एक नाग पेड़ों के झुंड में अपनी सुंदर बेटी के साभ रहता था। उनके साथ एक ब्राह्मण भी रहता था जो नाग और उसकी बेटी को घर के काम में सहायता करता था। ब्राह्मण ने उसकी कन्या के साथ शादी की । वह कन्या बहुत सुंदर और स्वास्थ्य थी उसका नाम चंद्रलेखा था। दोनों के बीच संबंध बहुत मधुर थे। ब्राह्मण दिल की गहराइयों से नाग कन्या से प्रेम करता था। नाग कन्या के नयन कमल के समान थे। राजा नर ने उस कन्या को देखने के पश्चात उसको ब्राह्मण से छीनने की ठान ली ताकि वह उसे अपनी मल्लिका बना सकें। किन्तु वह उसमें असफल रहा। पति ब्राह्मण और नागकन्या एक दूसरे के बफादार निकले और इस तरह से उनका बिछुड़ना संभव न हो सका।

अंत में नर ने ताकत का इस्तेमाल किया। किन्तु इस से पूर्व दोनों पति–पत्नी नाग के पास गए और उसको नर के व्यवहार के बारे में बताया। बात की असली तह तक जाकर नाग इतना क्रोधित हुआ कि उसकी अपनी दैवीय माया से बिजली गरजी, सारा आसमान काले बादलों से घिर गया और उसके बाद मूसलाधार वर्षा होने लगी। इस वर्षा से

नरपूर में हद सें ज्यादा तबाही हुई और यह तबाही इतनी थी कि नगर के लोग अपना सब कुछ पीछे छोड़कर, वहां से भाग गए। चंद्रलेखा या नाग कन्या लिदरनाला में बदल गईं। चारों ओर तबाही हो गई और लोगों ने अपना घर बापिस जाना उचित नहीं समझा। उस सब को देखकर, नाग ने पश्चापात किया किन्तु जो होना था वही हुआ।

अब यह शहर नाग के लिए फिर से रहने लायक नहीं रहा। फलस्वरूप उसने, उसके बेटों और जमाता ने वह जगह छोड़ दी। और अमरनाथ–पहलगाम रास्ते पर किसी जगह पर बस गए। यह भी कहा जाता है कि पूर्णरूप से शेषनाग के तट पर बस गए और उसका असली नाम शीर्शनाग कहा जाता है। शोषनाग का इस समय भी साफ–सफाफ पानी है और इसलिए भी पवित्र माना जाता है। क्योंकि रिवायत के अनुसार, हर एक जल–कुण्ड में, अमरनाथ गुफा के अंदर, शिवलिंग के दर्शन करने से पहले स्नान करना जरूरी है।

(ग) पदमा की कहानी – कश्मीर में मैदानी क्षेत्रों से प्रतिवर्ष ग्रीष्म ऋतु में लोग आते हैं। ऐसे ही एक आदमी का नाम था पदमा जो महाराजा ललित्यादित्य के दरबार में रहता था। वह एक मंझा हुआ चिकित्सक था। आजकल का पॉपोर कसबा जिसका प्राचीन नाम पद्मपुर था और जो इस समय श्रीनगर से आठ किलोमीटर दूर है का विकास पद्मा के नाम पर हुआ है। कहा जाता है कि किसी समय नाग जाति का कोई व्यक्ति बीमार हो गया और उसको तुरंत उपचार के लिए ललितादित्य के दरबारी चिकित्सक के पास भेजा गया।

चिकित्सक ने तुरंत मर्ज जानकर कहा कि इसकी आंखों में गड़बड़ है। उसने उसकी आंखें बचाने की लाख कोशिश की किन्तु सभी व्यर्थ रहीं, अंत में उसने उसकी नस्ल के विषय में पूरी जानकारी ली और जाना कि यह साधरण मानव नहीं हैं बल्कि उसका मूल नाग जाति से है। उसको इसी से रोग का पता चला। उसने जाना कि उसके मूंह से विषैले भाप

निकलकर, आंखों को लगते हैं, जिस से उसकी रोशनी गई है। उसने आंखों को ततकाल ढक लिया और कुछ दिनों के बाद, जब उसने उसकी आंखों की पट्टी खोली तो लगा कि यह पहले की तरह स्वास्थ्य है। उसने फिर से पहले की तरह देखना शुरू किया। नाग पदम नामक चिकित्सक से बहुत खुश हुए और उन्होंने उसे पारितोषिक के रूप में केसर की एक गुंटी दे दी जिसकी खेती इस समय पॉपोर में होती है।

(घ) चन्द्र देव की कहानी – एक और कहानी के अनुसार जब मानव सर्दियों में वापस मैदानी क्षेत्रों की ओर गए तो उन्होंने एक आदमी को कट्टीर में ही छोड़ दिया। वह बृद्ध और बीमार था। उसका नाम चन्द्र देव था। नागों ने उसको नील के पास पंहुचाया। नील ने उसको यहां, यह कहकर रहने का आदेश दिया कि यदि वह नीलमत के सिद्धांतों पर चलेगा और सर्दियों में नाग व पिशाच को मांस–मछली से प्रसन्न करेगा तो वह यहां सर्दियों में रह सकता है। या तभी नाग उसके रक्षक बन सकते हैं। चन्द्र देव ने शर्त मानी और ऐसा ही किया तभी से मैदानों से आए सारे मानव यहां शीत में भी रहने लगे और तब से ब्राह्मणों में, हर वर्ष पौष मास में, नागों के नाम पर निशिचित दिनों पर, मांस और मछली से प्रसन्न करना होता है इनके संबंध में कहानियां बहुत है किन्तु नाग संस्कृति पर वैज्ञानिक आधार पर सोचने की काफी गुंजाइश है, नहीं तो इसके कई भाग हमसे अछूते हैं।

रामायण हमारा प्राचीन महाकाव्य है। इस में हमें जन–जातियों के कई नाम मिलते हैं, जैसे किन्नर, नाग या ब्राह्मण भी इस संदर्भ में आते हैं। इसमें नाग जाति के कई उदाहरण मिलते हैं, जिनका मानवों के प्रति जंगजू जैसा व्यवहार रहा है। एक और उदाहरण है उन सुंदर नाग कन्याओं का जिनका रावण ने अपहरण किया था। इसमें यह भी उल्लेख है कि इसी राजा ने नागों को एक भ्यंकर युद्ध में परास्त करके उनके शहर को अपने अधीन कर लिया था। किन्तु खेद यह है कि इस शहर का नाम नहीं दिया गया है। इसके विरुद्ध हम महाभारत में नागों से संबंधित बहुत

सारे उल्लेख प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरण स्वरूप धर्तराष्ट्र के नागों से संबंध निकटतम रहे हैं। उसकी सेना में अठाईस हजार सैनिक भर्ती थे। अर्जुन ने उलूपी के साथ विवाह किया था जो नागराज चित्रवाहन की कन्या थी और यह वही आदमी है जिसने नागों को मानव–प्रकृति में लाया था। जन्मजय के कुल ब्राह्मण सेमासर और अस्तिका नामक ब्राह्मण नाग कन्याओं से पैदा हुए कहे जाते हैं। वसुदेव का दादा नाग जाति का मुखिया था।

पुराणों में नाग जाति के अस्तित्व और उनका मानव होने के कई उल्लेख मिलते हैं। वासुकि–पुराण के अनुसार नाग एक कबाईली जाति थी इसी तरह के मिलते–जुलते उल्लेख इतिहास के कई सूत्रों से मिलते हैं। मत्स्य पुराण में इसी बात को दोहरा कर कहा गया है कि नाग वह जन–जाति थी, जो कबाइली क्षेत्र में रहती थी। पदम पुराण और हरिवंश पुराण में कहा गया है कि पृथु से पहले, पृथ्वी पर नागों ने ही दूध बहाया है और धर्तराष्ट्र दूध प्रदान करता था जिसको पृथ्वी का राजा भी कहते हैं। इसका उल्लेख महाभारत में भी आया है। जिसके विषय में पहले ही उल्लेख किया गया है।

जहां तक बौद्ध संस्कृति का संबंध है, नाग उस जन–जाति को कहते हैं जो असाधारण है और जातक–कहानियों में स्पश्ष्ट उल्लेख है कि ये पहले किस तरह के मानव थे। इतना ही नहीं इनमें इनकी मानव–प्रकृति के बारे में स्पष्ट रूप से लिखा गया है। इनके अनुसार साक्य मुनि वह पहला अवतार था, जिसने नाग को वह धर्म सिखाया जो दर्शन से ओत–प्रोत था और यह उनके लिए नहीं था जो ज्ञानी थे, क्योंकि यह उनकी समझ से परे था। इस से यही अर्थ निकाला जा सकेगा कि नाग को बौद्ध मत के पवित्र सिद्धांत या उसूल सिखाए गए थे। और ये असल में वो लोग थे जो बौद्ध धर्म का असली मूल मंत्र जानते थे। तिब्बती साहित्य के अनुसार बुद्ध ने स्वयं को हिमालय की पर्वतीय चोटियों पर रहने के लिए प्रेरित किया था और इस आशय से अपने धर्म के नए उसूल सिखाए थे,

ताकि वह इनको दूसरों तक पंहुचाएं। यह इस ओर साफ संकेत है कि नाग मूलतः क्रूर नहीं थे और ये भी आम लोगों की तरह रहना चाहते थे।

इन सभी तथ्यों को सामने लाकर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि नाग मानव थे और यहां सर्प के रूप में बसे नहीं थे। किन्तु उस मानव – जाति के कबाइली संस्कार थे और रहन–सहन उसी तरह का था जिस तरह हम यहां दूर–दूर के गांव के लोगों में पाते हैं या उन लोगों में , जो जंगलों और बियाबानों में देखे जाते हैं। या जो आमतौर पर उत्तर–भारत में देखे जाते हैं।

यह भी सत्य है कि उन्होंने जल–कुण्ड, झीलों, दरिया या ऐसे ही अन्य स्थानों के तट पर कबाईलियों के रूप में आश्रय लिया है। यह इसलिए है क्योंकि जल ही जीवन है। यह उनके आश्रय का प्रारंभिक काल माना जाता है। समय के साथ–साथ यहां कई परिवर्तन आ गए। कई सभ्यताओं का पतन हुआ और नई सभ्यताओं का आर्विभाव हुआ। नई राजनीतिक प्रक्रिया सामने आई और नए नस्ल के लोगों को यहां प्रवेश करने की दिशा मिली। कश्मीर विभिन्न संस्कृतियों का केंद्र बिंदु बन गया।

कश्मीर में नागों के ऐसे कौन से केंद्र रहे हैं जहां ये रहते थे। उनको खोजने के मैंने भरसक प्रयास किए हैं और जो मिले हैं, उनको सब नाग कहते हैं, चाहें वह हिन्दू हों या मुस्लमान, सिक्ख हों या ईसाई या किसी भी विचारधारा से संबंध रखता हो। अब नाग मूलतः कश्मीरी शब्द बन गया है और हर कोई यहां झीलों को साफ–शफाफ रखना चाहता है। हिन्दुओं के लिए ये पूजनीय हैं और इनमें से कइयों को तीर्थ–स्थल का दर्जा दिया गया हैं। जहां तक साक्ष्य व अन्य जानकारी का संबंध है, यह बात साफ लगती है कि ये यहां सात बड़े जल–कुण्डों के तटों पर रहते थे जो इस समय भी विद्यमान हैं। ये हैं, अनंतनाग, वासकि–नाग, पदमनाग, त्रिश्कनाग, शेषनाग, शंखपाल नाग, और कुलक पापहरण नाग।

इसके अतिरिक्त नागों की एक बड़ी बस्ती नीलनाग के तट पर रहती थी। नीलनाग को इस समय वैरीनाग कहते हैं जो वितस्ता का मुख्य स्रोत माना जाता है। इसको कश्मीर की जीवन रेखा भी कहा जाता है। जो कश्मीर के एक भाग को दूसरे भाग से जोड़ती है। अनंतनाग सबसे नपहला नाग है जो अनन्त के नाम पर बसा हुआ है। यहां आमतौर पर गंधकीय जल–कुण्ड प्राप्त होते हैं। इस समय यह कश्मीर के एक नगर के रूप में बसा हुआ है। अनन्त के विषय में कहा जाता है कि ये सबसे वीर और साहसी थे जिनका नाग जाति में आदर और सम्मान था। इतना ही नहीं, भगवान कृष्ण भी गीताजी में कहते हैं कि मुझे उसी तरह का आदर व सम्मान मिलना चाहिए जो पाण्डवों में अनन्त को मिला था। आश्वन के चौह्दवें दिन विक्रमी कलेण्डर के अनुसार कश्मीरी पंडित हर वर्ष उत्सव मनाते हैं, क्योंकि इसी दिन अनन्त का जन्मोत्सव होता है।

राजतरंगिणी के अनुसार इस दिन सारे अनन्तनाग में दिये जलाए जाते थे और जल–कुण्ड सजाए जाते थे। इस दिन यहां की हिन्दु महिलाएं कपास की बनी नागाकृति कान में लगाती हैं, जिसको कश्मीरी में ''अनंध'' कहते हैं। यह अनन्त के मान–सम्मान में लगााई जाती हैं। कश्मीरी पण्डितों के लिए अनन्तनाग एक पवित्र स्थान है और इसको वही दर्जा दिया जाता है जो इनके लिए हरिद्वार को प्राप्त है।

दूसरे विशेष जल–कुण्ड का नाम है वासुकि–नाग जिसके तट पर नागों की एक बड़ी संख्या रहती थी। जिन्होंने यहां पर स्थायी रूप से रहने का मन बनाया था। इसका असली स्थान काजीकुण्ड में बताया जाता है। इस जल–कुण्ड की अपनी विशेष धर्मिक महत्ता है। और इसमें स्नना करना पुण्य प्राप्त करने के साथ–साथ भगवान शिव के पास पंहुचने के समान माना जाता है। शिव का मानना है कि नाग ही मानव के असली रक्षक हैं। प्राचीनकाल में कीमती गहने व सिक्कों को सुरक्षित रखने के लिए जमीन में गढा खोदकर रख देते थे और इस्तेमाल करने पर जब गढा खोला जाता था तो इसमें सर्प या नाग देखा जाता था।

तीसरा है महा पदम नाग जो विस्तार में बहुत बड़ा है और जिसके विषय में यह किंवदंति प्रचलित है कि यह कश्मीर के वुल्लर झील का पहरेदार है। यह वही झील है जिसको एशिया में सबसे बड़ी झील होने का सम्मान प्राप्त है। प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार यहां एक बड़ा और सम्पन्न नगर बसा हुआ था, जिसका नाम संदिमतनगर था किन्तु लोगों के कुकृत्यों के कारण यह झील में परिवर्तित हो गया और चारों ओर पानी से घिर गया। इसके बाद यह पिशाचों का गढ़ बन गया। इस झील का संरक्षण महा पदम कर रहे थे।

शेषनाग जो अमरनाथ–पहलगाम के रास्ते में पड़ता है, एक मुख्य नाग है जो सबके लिए पूजनीय है। कुछ विद्वानों के अनुसार इसका असली नाम सहसुरनाग है और इसी का विकृत हो सकता है। कहा जात है कि शेषनाग की बेटी मेघनाथ की पत्नी थी । मेघनाथ रावण का बेटा था। शेषनाग छद्मयुद्ध करने के सभी गुर जानता था। वह अमरनाथ में बिलकुल भगवान शिव के पास रहता था। हर एक श्रद्धालु अमरनाथ गुफा का कठिन सफर तय करने के बाद इसके अंदर प्रवेश करने से पहले , शेषनााग में नहाते हैं। यह एक जरूरी अमल है, तभी वह गुफा में शिवलिंग के दर्शन कर सकता है।

इस नाग में नहाना श्रद्धालुओं की शुभ कामनाओं का प्रतीक माना जाता है। इसके अतिरिक्त जो नाग–जाति के मुख्य आश्रय स्थल माने जाते हैं, वह हैं जेवन, पीरपंचाल, पॉपोर और काजीकुण्ड। किन्तु दुर्भाग्य यह है कि इन सभी नागपोंखरियों का यहां कहीं नामो–निशान नहीं है। इसके अतिरिक्त हमें तीन और बड़े नागों का अस्तित्व देखने को मिलता है। इनके नाम हैं– नीलनाग, कोंकरनाग और पापहरण नाग। ये पवित्र और निर्मल माने जाते हैं। इनमें से पहला कश्यप के बेटे के नाम पर अस्तित्व में आया है जिसका नाम नील है। दूसरा विष्णु के नाम पर है।

कश्मीर में सारे लोग नाग या जल–कुण्ड को पवित्र मानते हैं। इनमें से जो भी मछलियां हैं वह पकड़ी नहीं जाती। यहां के मुस्लमान भी इस पर अमल करते हैं। कश्मीरी ब्राह्मणों का नाग संस्कृति के साथ गहरा संबंध है और इनका अपने को ब्राह्मण कहने का कोई अधिकार नहीं जब तक न उनके माथें पर टीका लगा हो क्योंकि यह विष्णु की आंख है। यही एक ऐसा देवता है, जिसने नागों को बसने का आदेश दिया है। समय ने करवट बदली है नागों के विषय में जो भी जानकारी है उसकी आत्मा यहां का लोक साहित्य है। यह शोध का विषय है, वाद–विवाद का विषय भी। इसको उछालने की जरूरत है।

ooo

किश्तवाड़ में बुद्धमत

— केवल कृष्ण शर्मा

लगभग द्वितीय शताब्दी बी.सी. में बुद्धमत का प्रभाव किश्तवाड़ ज़िला के नागसेनी परगना में पड़ा हुआ प्रतीत होता है। बुद्धमत का प्रकाण्ड पण्डित तथा संन्यासी नागसेन परगना का रहने वाला था जो बुनियादी तौर पर इलाका त्रिगाम के गांव गलीगड़ के निकट कोन्जे का एक ब्राह्मण राजकुमार था।

कोन्जे से नागसेन के गांव भातन तक जहां बुद्धधर्म की सभ्यता के कुछ आसार पाए गए हैं का मार्ग पहाड़ी दर्रे कोन्जागलू से जाता है। नागसेन के प्रभाव के कारण ही इस परगना का नाम नागसेनी पड़ा है। नागसेन ने वेद–पुराण तथा शास्त्रों के अध्ययन में अच्छी योग्यता प्राप्त की थी। बीस वर्ष की आयु में उस को अपने गुरु अश्वगुप्त ने उसे त्रिपिता विद्या ग्रहण करने के लिए पाटलीपुत्र भेजा। इस तरह से वह छोटी आयु में ही अरहत अर्थात् बुद्धधर्म का समर्थक बन गया और संन्यासी के रूप में भ्रमण करता हुआ बुद्धधर्म का प्रचार करने लगा। अपने भ्रमण के दौरान एक बार वह वर्तमान सियालकोट के राजा मिनेन्द्र के सम्पर्क में आया।

राजा मिनेन्द्र को ज्ञान प्राप्त करने की बहुत पिपासा थी और वह बुद्ध णर्म का दिल से विरोध करता था। नागसेन को अपने आचार्य ने मिनेन्द्र को परास्त करने तथा बुद्धभिक्षुओं को शर्मिंदा होने से बचाने के लिए नियुक्त किया। आखिरकार नागसेन को शास्त्रार्थ के लिए बादशाह की राजधानी सियालकोट के महल में बुलाया गया जहां राजा के पांच सौ

दरबारी जिन के नाम कुछ–कुछ भारतीय लगते थे, उपस्थित थे। राजा और नागसेन के बीच शास्त्रार्थ हुआ। नागसेन ने राजा के सभी प्रश्नों का योग्यतापूर्ण उत्तर दिया और राजा को संतुष्ट कर दिया। राजा को पूर्ण रूप से प्रतीती हो गई और उसने बुद्धधर्म को स्वीकार कर लिया। इस तरह से वह बौद्ध–साहित्य का मिलिन्द राजा बन गया।

भातन में सम्भाषण– पड़िहारना से तीन–चार किलोमीटर पैदल मार्ग की ढालवां चढ़ाई चढ़ने के बाद सयद्रमन नाम का रक्षिततल है। इस खूबसूरत प्राकृतिक समतल और प्रभावशाली भूभाग के तीनों ओर तो काफी ढलान है परन्तु एक ओर ज़मींदारों की कृषि सम्बंधी भूमि है। वैसे तो इस के चारों तरफ मन मोहक दृश्य पटल हैं। प्राचीन काल से ही इस स्थान ने अपना नाम और यश दोनों कायम रखा है। दूसरी शताब्दी में नागसेन ने राजा मिलिन्द की प्रश्नावली में इस स्थान का नाम रक्षिततल बताया था।

कई मंदिरों के अवशेष आज भी इस भू–भाग में उपलब्ध हैं। निर्माण कार्य में प्रयोग किए गए पत्थरों के बड़े–बड़े स्तूपों पर कई शिलालेख धीमें पड़ गए हैं। जिन्हें स्पष्ट पढ़ा नहीं गया है। सयद्रमन से लगभग दो किलोमीटर चढ़ाई पर भातन गांव के नजदीक बुद्ध की एक छोटी मूर्ति, एक बड़ा अशोक चक्र एक पत्थर पर अवशेष के रूप में दिखाई देते हैं। पुरातत्व विभाग के द्वारा यदि यहां कार्य किया जाए तो कुछ और अवशेष मिलने की सम्भावना भी हो सकती है। सयद्रमन में भी पत्थरों के स्तूपों पर कुछ अक्षर फीके–फीके दिखते हैं जिन्हें पूरी तरह से पढ़ा नहीं जा सकता है।

नागसेन के जन्म स्थान पर प्रतिवाद– नागसेन के जन्म स्थान के बारे में इतिहासकारों का आपस में मतभेद है। बेमज़ी के अनुसार बौद्ध संन्यासी मिलिन्द और राजा मिनेन्द्र के बीच शास्त्रार्थ कश्मीर से बारह योजन की देरी पर किसी स्थान पर हुआ था। बारह योजन एक सौ आठ मील के बरावबर होते हैं। अतः कश्मीर घाटी में इस सभा का होना मुमकिन

नहीं हो सकता। कल्हण जैसे इतिहासकार ने भी अपनी राजतरंगिनी में कोई वर्णन नहीं किया है।

प्रो. गुलाम महिउद्दीन हाजनी ने ''काशुर शायरी'' नामक पुस्तक में कहा है कि ''मिलिन्द पनहो'' किश्श्तवाड़ी में लिखी गई थी और वह कश्मीर का रहने वाला था। अब यहां भी समझ नहीं आता कि यदि वह कश्मीर का रहने वाला था तो उसने किश्तवाड़ी में कैसे लिखा। ''हिस्टी एण्ड कल्चर आफ किश्तवाड़'' के लेखक डी. सी. शर्मा नागसेन को किश्श्तवाड़ का रहने वाला मानते हैं। क्योंकि उस ने यह किताब किश्तवाड़ी में लिखी थी और उस के नाम पर ही यहां के एक बहुत बड़े इलाके का नाम भी नागसेनी पड़ा था।

इसके अतिरिक्त भातन गांव के अवशेष भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि नागसेन किश्तवाड़ी ही था। जे.एन. गनहार भी लिखते हैं कि सियालकोट के राजा मिलिन्द को एक बौद्ध संन्यासी नागसेन ने द्वितीय शताब्दी बी.सी. में अपनी बुद्धिमता से जीत लिया और फिर नागसेनी का नाम नागसेन के नाम पर रखा गया था।

ज्योतिश्वर पाठक लिखते हैं किश्तवाड़ का राजा नागसेन, भद्रवाह का राजा नागपाल और बहुत से अन्य राजपुरुष समानता में दिखते हैं। मिनिंदर की ज्ञान की तलारूा को बौद्ध संन्यासी नागसेन ने पूरा किया। जो एधमपुर से किश्तवाड़ तक फैले हिमालय श्रृंखला कुंजगला के स्थान तक आया था जो किश्तवाड़ का इलाका है। यह कुंजगला यथार्थ में हस्ती सरथल मार्ग के ऊपर वर्तमान में कोन्जे नाम का एक गांव है यहां से नागसेनी भातन के लिए भी ''गला'' नामक दर्रे से रास्ता है।

वर्तमान में किश्तवाड़ के पाडर क्षेत्र को छोड़ कर अन्य किसी स्थान में स्थायी निवास के रूप में बुद्ध धर्म के अनुयायी नहीं दिखते हैं। पाडर क्षेत्र में कई लोग बौद्ध धर्म के मानने वाले हैं। पाडर के कई स्थानों

पर इनके पूजा घर ऊंचे स्थानों पर बनाए गए है। एक नवनिर्मित गुम्पा अठोली के पार गुलाबगढ़ के दक्षिणी भाग में चन्द्रभागा नदी के किनारे समतल भूमि पर बनाया हुआ पाया है।

इस परिसर में एक छोटा सा सहन भी है। साथ में एक अतिथि गृह भी है जहां यात्री लोग आकर ठहरते हैं। इस के साथ ही एक बौद्ध विद्यालय भी है जहां विद्यार्थियों का पठन–पाठन का कार्यक्रम नियमित रूप से चलता है। इस के अतिरिक्त पाडर के कई अन्य गावों में भी जहां –जहां बौद्ध बस्ती है, वहां – वहां इनके अपने पूजा गृह हैं।

ooo

सजार (पाडर) के इतिहास व संस्कृति के दिग्दर्शन

– मंगेश कुमार

केंद्र शासित प्रदेश जम्मू–कश्मीर के किश्तवाड़ जनपद में दरिया चिनाव के पार हिमालय के उत्तंग शिखर पर स्थित सजार (पाडर) स्थान है जिसे नागभूमि कहा जाता है। यहां पर केवल हिन्दू जाति के लोग निवास करते हैं। इस पिछड़े स्थान का क्षेत्रफल अनुमान द्वारा बताना भी असंभव है क्योंकि यह डल क्षेत्र बहुत ही विकट है। भौगौलिक रूप से इस क्षेत्र पर हुए शोध का अभी तक कोई उल्लेख नहीं मिला है। साजार के चन्यास गांव से कई किलोमीटर दूर अधिक गहरे नदी नाले एवं हिमाच्छादित ज़रेव नाग का ऊंचा पर्वत है जो प्रति बारह माह में बर्फ की सफेद चादर से ढका रहता है।

इस प्रकार का पर्वत हिमाचल प्रदेश के मणिमहेश शिव जी के तीर्थ स्थल पर भी स्थित है। किंतु जरेव नाग एवं शिवजी के हिमाच्छादित पर्वत में जो अंतर दिखाई दिया है वह केवल एक गुफा का है। हिमाचल के मणिमहेश पवित्र हिन्दू तीर्थ स्थल पर बर्फ से ढकी गुफा है जिसमें शिवजी और माता गौरां निवास करते हैं अपितु मिधवल पर लगे जरेव नाग के हिमाच्छादित पर्वत पर मणिमहेश की भांति गुफा तो नहीं अपितु हिमधवल पर लगे जरेव नाग के चरणों के चिन्ह प्रदर्शित होते हैं। आंखो देखे बिना यह कहावत सी लगती है यद्यपि वास्तविक रूप में जब क्षेत्र की यात्रा की जाए तो यात्री यथार्थ का बोध कर सकता है।

जरेव नाग के परिप्रेक्ष्य में बात करें तो यह मंदिर किसी व्यक्ति के हाथों निर्मित नहीं बल्कि प्रकृति ने इनका निमार्ण किया है। हिम से ढके

उस पर्वत पर एक सौ से अधिक मंदिर (जैसे चौरासी भूमि मंदिर, बरमोहर हिमाचल प्रदेश में) हैं। जिन्हें देखकर यात्री को दृढ़ विश्वास होता है कि यह वास्तविक हैं। जरेव नाग पर्वत श्रंखलाएं कई वर्ग मीटर दूरी तक फैली हुई हैं। इस प्रकार का दृश्य यहां के अन्यत्र पर्वतों पर दिखाई नहीं देता। ऐसा दृश्य केवल इसी एक पर्वत पर नज़र अता हैं

इसी हिमधवल पर्वत के नीचे एक विशाल हिमनद है, जिस से शेक्ना नामक नदी निकलती है। गर्मी के महीने में यह स्थान मनोरम और आकर्षक लगता है। हिम से ढका पर्वत और नीचे मैदानी क्षेत्र में भिन्न–भिन्न प्रकार की हरी–भरी घास तथा भ्न्नि–भिन्न प्रकार की जड़ी–बूटियां हैं। दूसरी तरफ छोटे–छोटे नाले हैं जिनमें थोड़ा–थोड़ा पानी बहता है। वहां चारों ओर बर्फ से ढके हुए पर्वतों के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं देता। मेरी दृष्टि में शेक्ना प्रकृति की गोद में स्थित है जहां के वनों में भिन्न–भिन्न प्रकार की जड़ी–बूटियां और पेड़–पौधे हैं, जिनमें साल, चीड़, देवदार और सबसे ज़्यादा मशहूर भोज का पेड़ है जिसके पत्र प्राचीन काल में जब कागज का अविष्कार नहीं हुआ था लेखन समग्री के रूप में प्रयोग किए जाते थे।

ग्रीष्म ऋतु में वहां का मौसम सुहावना होता है जहां पर सजार के स्थानीय लोग तथा भद्रवाह–डोडा के चरवाल लोग भेड़–बकरियां लेकर जाते हैं। जिन ढोकों पर चरवाल लोग रहते हैं, वहां खाद्य सामग्री पंहुचाना उनके लिए दूभर हो जाता है। वहां के रास्तों की स्थिति अच्छी नहीं है। बड़ी मुश्किल से स्थानीय लोगों ने दो फीट का मार्ग बनाया है। बीच–बीच में कहीं–कहीं स्थानों पर पैर टिकाना भी मुश्किल हो जाता है। यदि गौर से देखा जाए तो यहां के लोग सम्पूर्ण रूप से माल–मवेशियों पर निर्भर हैं। अनुमानतः यहां की 85 फीसदी जनसंख्या गांव में निवास करती है और 15 प्रतिशत शहरी क्षेत्र में लेकिन स्थायी रूप से नहीं बल्कि नौकरी और शिक्षा के प्रयोजन से। इस पिछड़े क्षेत्र में मात्र चार गांव हैं लेकिन

जनसंख्या बहुत अधिक है। वर्तमान में यहां के लोग जो जीवन यापन कर रहे हैं वह लगभग पहले से कई गुणा सुखमय जीवन है।

सजार का वर्तमान, पूर्व साक्षरता दर एवं इंटरनेट सेवा – सजार के एक अध्यापक का साक्षात्कार लेने के बाद वहां की शिक्षा की स्थिति की जानकारी प्राप्त हुई है। सन् 1973 ई. में वहां पहले प्राथमिक विद्यालय की स्थापना की गई थी। तब शिक्षा के क्षेत्र में लोग थोड़ा सक्रिय होकर भाग लेने लगे थे। लगता नहीं कि शुरुआती दौर में ये लोग प्राथमिक स्तर से अधिक शिक्षित होंगे। प्रमुख कारण यह है कि उन्हें किसी भी प्रकार की सुविधाएं नहीं मिलती थीं। अधिकतर लोग माल–मवेशी और कृषि कार्यों में लगे रहते थे। जैसे ही सरकार ने सर्व शिक्षा अभियान की योजना आरंभ की, तब से वहां शिक्षा का प्रचार–प्रसार तीव्र गति से होने लगा है।

वर्तमान में सजार के चार गावों में पंद्रह विद्यार्थी स्नातक, परास्नातक और बी. एड. हैं। पांच अध्यापक प्राथमिक एवं माध्यमिक सरकारी विद्यालयों में कार्यरत हैं। साजार क्षेत्र के चार गांवों में मात्र दो विद्यालय हैं जिनमें से एक सरकारी माध्यमिक विद्यालय चौकी रदाना में और दूसरा सरकारी प्राथमिक विद्यायलय चन्यास ढिढि में है। हाई स्कूल आदि की शिक्षा के लिए छात्रों को सजार से बाहर अन्य क्षेत्रों में जाना पड़ता है।

यहां पर इंटरनेट की सुविधाओं की बात करें तो शिक्षा के लिए इसका प्रयोग शून्य के बराबर ही किया जाता है। कारण यह है कि यहां इंटरनेट सेवा का अधिक अभाव है। इंटरनेट शिक्षा या अन्य किसी खोज के उपयोग में लाना तो दूर की बात है लेकिन कभी–कभी फोन पर बात करने के लिए भी पर्याप्त संचार नहीं मिल पाता। विज्ञान के इस प्रगतिशील दौर में अभी तक भी वहां टावर की कोई व्यवस्था नहीं है। इस कारण वहां के छात्र सोशल मीडिया का लाभ नहीं ले पाते हैं।

सजार का नामकरण – सजार के कुछ लोगें से किए गए साक्षात्कार के आधार पर कहा जाता है कि पहले जब गुलाबगढ़ पर छतर सिंह का शासन हुआ करता था, तब सजार को सजावार कहा जाता था। कई मतानुसार सज़ावार का शाब्दिक अर्थ है जिस स्थान पर अपराधियों को सज़ा दी जाए उस स्थान को सज़ावार कहा जाता है। इसी प्रकार वहां के लोगों का कहना है कि हमने अपने पूर्वजों से सुना है कि जब कोई व्यक्ति कहीं अपराध करता था तो उसे सज़ा देने के लिए सज़ावार भेजा जाता था। उस समय कारागारों में भेजने को कोई नियम नहीं था। लेकिन यह बात सुन कर आश्चर्य होता है। यदि सज़ावार में लोगों को सज़ा के लिए भेजा जाता था तो कैसे ? यहां एक प्रश्न खड़ा होता है। क्योकि सरकार द्वारा प्रदान की गई सुविधाएं तो दूर की बात है। मगर उस समय सज़ावार आने–जाने के लिए दरिया चिनाव पर कोई पुल तक नहीं था, न कोई नाव थी।

इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तर स्पष्ट रूप से तर्कसंगत दिए गए हैं। जिनमें कोई संदेह नहीं है। युवा ऋषि कुमार के अनुसार पुराने जमाने में उनके पूर्वज देसी इंजीनियर हुआ करते थे। उस समय सुविधाएं न मिलने के कारण शिक्षा के क्षेत्र में आगे तो नहीं बढ़ सके लेकिन उनकी चिंतन–मनन की क्षमता आज के अभियंता की भांति ही थी। जो अभियंता लोग विज्ञान के इस दौर में सोचते हैं और करते हैं। ऐसी उन्नति हमारे पूर्वज अपने पुराने जमाने में करते थे। वो स्वयं पतली लाठियों को मोड़कर झूले की एक श्रंखला तैयार करते थे। फिर उन झूलों पर चढ़कर दरिया पार करते थे। झूला इधर–उधर हिलता रहता थां।

असमंजस वाली बात यह है कि झूले के लिए वह लाठियां किस पेड़ से इकट्ठी की होती थीं जो इतनी मजबूत हुआ करती थीं ? लाठी तो टूट जाती है, झूला तो लोहे का बनाया जाता है। लाठी के झूले की एक कहावत सी लगती है। मगर यह सत्य है। जिस तरह लोहे की तार या

रस्सी होती है वैसे गांठ लगाकर लाठियों को जोड़ा जाता था जिसे ग्रामीण भाषा में किंधल कहा जाता है जोकि किलर और रौव की लाठियों के बनाए जाते थे। ये पेड़ पौधे अधिकतर पाडर क्षेत्र में पाए जाते हैं। इनकी लाठी और डंडे बहुत मजबूत होते हैं।

यदि आज के दौर की बात करें तो सजार का दस गुणा विकास हुआ है। लोगों के आने–जाने के लिए सरकार ने दो सेतुओं का निमार्ण किया है। एक दरिया चिनाव पर और दूसरा हैलोन नाले पर है। दोनों एक–दूसरे से केवल दस कदम की दूरी पर हैं। अब सरकार वहां तक गाड़ी पंहुचाने का भी प्रयास कर रही है।

सजार के लोगों की मौलिक आवश्यकताएं – इस संदर्भ में अध्यापक पूर्ण चंद के अनुसार उस समय दाल, चावल, गेहूं, मक्की तो उनके अपने खेतों में से ही प्राप्त हो जाती थी मगर नमक आदि महत्वपूर्ण सामग्री के लिए उनके पूर्वजों को यहां से पैदल भेड़ लेकर उधमपुर जाना पड़ता था। तब गाड़ी की कोई सुविधा नहीं थी। वहां से भेड़ पर नमक आदि लाद कर ले आते थे। कुछ स्वयं और कुछ भेड़ पर लाद कर लगभग एक माह के समय में उधमपुर से नमक आदि सामग्री लेकर घर लौट आते थे।

सजार की संस्कृति का विस्तारीकरण – सजार के लोग देसी, घी पर्याप्त मात्रा में खाते हैं। मक्की की रोटी, गेहूं की रोटी, कोद्रे की रोटी और छाछ वहां का लोकप्रिय खना है। वहां के वनों में गुच्छी नामक एक सब्जी होती है जिसके कई रूप होते हैं, जैसे काख और शोड़ी जो प्राकृतिक होती है। मक्की की रोटी के साथ इन सब्जियों को खाने में बहुत आनंद आता है।

प्राचीन काल की भांति वह घराटों यानि पन चक्की पर आटा पीसते हैं। लक्कड़ी जलाकर खाना बनाते हैं। यह लोग ऊनी कपड़े और

घास के जूते पहनते हैं। भारी बर्फवारी में घास के जूते और ऊनी जुराब में बिल्कुल भी ठंउ नहीं लगती। और न ही उनके अंदर बर्फ जा सकती है। अधिकतर लोग स्वनिर्मित जूते और कपड़े पहनते हैं। यहां के लोकगीत बहुत ही मनभावन होते हैं। घास काटने के समय जब कभी ग्रामीण लोग एक – दूसरे की सहायता करते हैं, तब महिलाएं वहां के लोक गीत गाती हैं।

सजार की पूरी संस्कृति एवं सभ्यता (भाषा) के अलावा भद्रवाह की संस्कृति और सभ्यता से मेल खाती है। अभी तक किसी भी विद्वान द्वारा इस क्षेत्र की संस्कृति का गहन अध्ययन–विश्लेषण किया हुआ नहीं मिलता है जिस से सजार की ऐतिहासिकता का कोई विशेष ठोस प्रमाण मिल सके। वहां के लोगों की मातृभाषा पाडरी है। कुछ लोग भद्रवाही भी बोल लेते हैं। इसके अलावा शिक्षित वर्ग को हिन्दी, अंग्रेजी तथा उर्दू का भी ज्ञान है।

सजारु लोगों के कुल देवी–देवता– सजारु लोग परंपराओं का सम्मान व आदर करना अपना परम धर्म समझते हैं। देवी देवताओं पर इनका अटूट विश्वास है। इनके प्रमुख देवी–देवता इस प्रकार हैं–

जरेव नाग – जरेव नाग शेक्ना के पर्वत पर आसीन है। वहां पर कोई तीर्थ यात्री नहीं जाता है। वहां पर जाने के लिए किसी भी प्रकार की कोई सुविधा उपलब्ध नहीं है। यदि कोई पैदल यात्रा करने की ठान भी ले तो मार्ग की स्थिति ठीक न होने के कारण वहां असानी से नहीं पंहुच सकता है। जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है कि डल क्षेत्र है। गांव से एक किलोमीटर दूर पीछे विकट वन क्षेत्र में भिन्न–भिन्न प्रकार के पशु–पक्षियों की मनोरम आवाजें सुनाई देती हैं।

वहां के लोग जरेव नाग पर दृढ़ विश्वास रखते हैं। ग्रीष्म ऋतु में ढिढि चन्यास ग्रामीण अपने पशुओं आदि के साथ ज्येष्ठ माह से लेकर

भादो तक उस क्षेत्र में घूमते हैं। उनका कहना है कि किसी भी प्राणी के पैर में चोट तक नहीं आती, चाहे माल–मवेशी हों या मनुष्य। निसंकोच भाव से लोग निर्जन वनों में चरवाली और गवाली करते हैं। लोगों का मत है कि यहां के देवी देवता बहुत शक्तिशाली हैं। हम जो भी मनोकामना करें, वह अवश्य पूरी होती है।

प्लाट नाग – ग्राम चौकी से ऊपर अनुमानतः तीन किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इस तीर्थ स्थल पर प्रतिवर्ष ज्येष्ठ 18 को सजार से अटाक नाम से यात्रा जाती है। उस दिन वहां भंडारे का आयोजन होता है। लोगें ने सुनसान जंगल में नागराज की गुफा में अनगिनत लोहे के त्रिशूल व निशानियां नाग देवता को भेंट स्वरूप प्रदान की हुई हैं। वहां गुफा के अलावा और कोई मंदिर नहीं है, गुफा की शोभा किसी मंदिर से भी अधिक आकर्षक है। बसंत में चौकी, रदाना के ग्रामीण अपने माल–मवेशियों सहित कुछ माह के लिए प्लाट नाग के क्षेत्र में चले जाते हैं जिसे वहां की बोल्ली में पुहाली कहा जाता है। इस क्षेत्र के लोगों ने अपनी संस्कृति की विरासत को सदियों से संजोए रखा है।

इसके साथ ही कासर नाग एवं ज्वाला माता आदि बी इस क्षेत्र के लोगों के कुल देवी–देवता हैं।

सजारु लोगों को अपनी लोक संस्कृति पर अटूट श्रद्धा और गर्व है क्योंकि जब आषाढ़ महीने में उनका माल डोकों पर जाता है तब वह डेढ महीने स्वच्छता में रहते हैं। जिसे उनकी भाषा में सुच्चे की संज्ञा दी जाती है। उन दिनों पुवहालियों में रहने वाले गवाल किसी भी प्रकार का कोई अनुचित कार्य नहीं करते, न ही किसी के साथ हाथ मिलाते हैं, न ही गले मिलते और न ही चरण स्पर्श करते न करवातते हैं। अन्य सम्बंधी को ही नहीं बल्कि पत्नी और बच्चों को भी उनके पास जाने की अनुमति नहीं होती। पुवहाली में पुरुष ही रहते हैं, गाय का दूध निकालना आदि समस्त कार्य वहां के पुरुष स्वयं ही करते हैं।

यदि कोई रोगी हो जाए तो उसे सुच्चे की दी हुई रेखा से बाहर रखा जाता है। यह रेखा लक्ष्मण रेखा की भांति होती है। फिर घर या गांव के लिए संदेश भेज कर उसे वहां से उठाकर उपचार के लिए भेजा जाता है। अगर कोई अज्ञानता से उस रेखा के अंदर जाता है तो उसे उनके द्वारा निर्धारित दंड में भेड़ या बकरा देना पड़ता है। जिसकी वह बलि चढ़ा सकें। उनकी भाषा में उसे भकतेरु कहा जाता है। किसी भी परिस्थिति में वह अपने रीति–रिवाज की मर्यादा का हनन नहीं होने देते।

उनके द्वारा लगाई गई सुच्चे से सम्बंधित रुकावटों को रक्षा बंधन दे दिन खोला जाता है जिसे उनकी भाषा में सुच्चा खोलना कहते हैं। जो लोग पुवहाली में सुच्चे में बैठते हैं उस दिन वो घर में आकर एक डेढ माह में जमा किया हुआ घी और ताजे दूध का भोग नागराज को लगवाते हैं। तत्पश्चात अपने हाथों से सब लोगों में बांटते हैं।

उस दिन सजार में बड़ी धूमधाम से मेला लगता है, रात को जागरण होता है। जागरण को पाडरी भाषा में जागरु कहते हैं। सजार की संस्कृति विशेष रूप से हिंदू संस्कृति है। उन लोगों के जीवन में यह हिन्दू संस्कृति संपूर्णयता से रची बसी हुई है। इस क्षेत्र के लोग हृदय के कठोर, रुढ़ीवादी हैं। आधुनिक काल के इस दौर में भी इन लोगों में प्राचीन काल से चलती आ रही परंपरा के दिग्दर्शन दृष्टिगोचर होते हैं।

ooo

वीर–भद्रेश्वर मठ ''राजौरी''

–विद्या सागर शर्मा

पौराणिक तथ्य – शिव–महापुराण के अनुसार वीर–भद्रेश्वर की उत्पत्ति की कथा देवादि देव भगवान शिव तथा राजा दक्ष की पुत्री माता सती के साथा जुड़ी हुई है। जिन का शास्त्रों में अनेक स्थानों से प्रासंगिक प्रमाण मिलता है।

भद्रंकर्पोमिः श्रपुसाम देवा, भद्रं प्श्येमाक्षिमि यजूवाः।
स्थिरै रणेस्तुष्टुवॉ सरतनुभिर्व, रामहि देवहिंत यदायु।।
भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रात्रि सुगम।।

उल्लेखनीय है कि माता सती के पिता राजा दक्ष ने कण्खल तीर्थ हरिद्वार में विशाल यज्ञ का आयेजन किया जिसमें भगवान ब्रह्मा तथा विष्णु सहित संसार के सभी देवी–देवताओं को आमंत्रित किया परंतु अपने दामाद देवादि देव भगवान शिव को किसी पूर्व प्रासंगिक अभिष्टा के कारण उस यज्ञ में आमंत्रित नहीं किया। माता सती अपने पति का यह अपमान सहन न कर सकी और वह राजा दक्ष द्वारा आयेजित उस यज्ञ के हवन कुंण्ड में कूद कर मृत्यु को प्राप्त हुई। यह दुखद समाचार जब कैलाश पर्वत पर ध्यानारत भगवान शिव को मिला तो वह क्रोधित हो उठे और क्रोध में आकर अपनी एक जटा सिर से उखाड़ कर धरती पर पटक दी।

कहा जाता है कि उसी जटा के उत्तरी किनारे से अति क्रुद्ध रूद्र–रूप वीर भद्रेश्वर प्रकट हुए और दक्षिणी किनारे से माता भद्रकाली का अवतार हुआ। वीर भद्रेश्वर ने भगवान शिव से आदेश मांगा जिस पर भगवान शिव ने उसे दक्ष के यज्ञ को विध्वंस करने तथा राजा दक्ष और रानी मेनका को जिंदा पकड़ कर लाने का आदेश दिया। अतः अपने स्वामी

भगवान शिव के आदेशानुसार कार्य सम्पन्न करने के बादराजा दक्ष एवं माता मेनका को अपने साथ लेकर उसने वायु मार्ग से कैलाश की ओर प्रस्थान किया। यह एक स्थानीय मान्यता है कि रास्ते में थकान के कारणवश हिमालय की उत्तरी–पश्चिमी तराई भाग की इस चोटी पर कुछ काल के लिए विश्राम किया। तत्क्षण इस स्थान पर एक बहुत विशाल शिला को मंदिर का सा आकार देकर समर्पित किया। और कुछ देर यहां पर विश्राम करने के उपरांत अपने आराध्य देव भगवान शिव का ध्यान किया। इसके बाद समय–समय पर अनेक साधु संत वन विचरन करते–करते इस मंदिर रूपी मठ में आ कर और ध्यान तथा योग विद्या का अभ्यास करते रहे हैं।

एक अन्य मान्यता के अनुसार पांडवों ने भी हिमालय की यात्रा के दौरान इस शिाला रूपी मंदिर का निर्माण एक ही रात्री में कर दिया था।

ऐतिहासिक तथ्य– वीर भद्रेश्वर मठ के निर्माण के 5000 वर्ष पुराने पौराणिक इतिहास के साथ करीब 2900 वर्ष पुराना अर्थात् 141 ई. का कनिष्क काल के ऐतिहासिक तथ्य यहां के शिलालेखों से प्रमाणित होता है। पेशावर पंजाब से कश्मीर तक कनिष्क काल में अनेक मंदिरों तथा बौद्ध मठों का निर्माण हुआ। कंसपुरा कश्मीर स्थित हारवन बाग के निकट कुण्डलवन में कनिष्क काल के समय में एक विशाल आध्यातमिक सभा का आयोजन हुआ जिस में करीब 500 भिक्षुओं ने भाग लिया।

इसमें बौद्ध मत दो भागों में बंट गया। एक हीनयान मत और दूसरा महायान मत। हीनयान मूर्ति पूजा के विरुद्ध था। परन्तु महायान मत के अनुयाइयों ने अनेक बौद्ध मंदिर तथा भवन बनवाए और वहां पूजा आरंभ करवाई। कनिष्क बिंदूसार के पुत्र सम्राट अशोक के बाद के काल में बौद्ध मत का अनुयायी बना। यह महायान मत से ताल्लुक रखता था। महायान मत के लोग बौद्ध को देवता का स्थान देते थे और देवताओं की पूजा करते थे। कनिष्क को कला एवं साहित्य में बहुत रुचि थी। इनके काल में साहित्य में आयुर्वेद के प्रसिद्ध विद्वान चरक हुए हैं जिन्होंने चरक संहिता लिखी। उसी काल में अन्य सुप्रसिद्ध लेखक नागार्जुन, अश्वघोष तथा वसुमित्र हुए। अश्वघोष ने बौद्ध चरित्र के कई ग्रन्थ भी लिखे।

कला के क्षेत्र में भी कनिष्क की बड़ी रुचि थी जिसकी जीती–जागती मिसाल कश्मीर में अनेक मूर्तियों तथा कलाकृतियों से प्रकट होती है। जिन में राजौरी का वीर–भद्रेश्वर मठ एवं मंदिर परिसर तथा कनिष्क की अपनी राजधानी पुष्पपुरा–पेशावर में 400 फुट उंचा एक स्मारक अति उल्लेखनीय है जिस के नीचे बौद्ध के कई विशेष चिन्ह आज भी देखने को मिलते हैं।

अवस्थिति– वीर–भद्ररेश्वर मठ जम्मू–कश्मीर राज्य के राजौरी जनपद में स्थित है। यह मठ राजौरी से करीब 60 किलोमीटर की दूरी पर, अथवा जम्मू कश्मीर की शीत कालीन राजधानी जम्मू से 180 किलोमीटर दूरी पर एक ऊंची अति प्राकृतिक एवं सुदर पर्वत श्रंखला पर स्थित है। जम्मू से राजौरी अथवा पुंछ की ओर जाते हुए लगभग 100 किलोमीटर की दूरी पर चिंगस गांव में मुगल सम्राट जहांगीर का एक स्मारक तथा सराय आती है, इस के ठीक 10 किलोमीटर आगे चलकर कल्लर से एक सड़क मार्ग पश्चिम की ओर निकलता है। 45 किलोमीटर का पर्वतीय मार्ग ऊंचे घने चीड़ के वृक्षों के बीचो–बीच सांप सदृश्य बल खाता दिखाई देता है। यह सड़क मार्ग अति सुहावना और मनमोहक प्रतीत होता है।

कल्लर से दो किलोमीटर के बाद व कैम्प क्षेत्र को पार कर डूंगी–ब्लाक प्रारंभ हो जाता है। यहां पर एक प्राइमरी स्वास्थ्य केंद्र है। हायर स्कैंडरी स्कूल तथा अन्य छोटे–मोटे कार्यालय जेसे बैंक, डाकघर आदि निर्मित हैं। इस से आगे केरी–क्षेत्र प्रारंभ होता है। यहां हरे –भरे खेतों तथा निम्न वर्ग के किसानों के घर यदा–कदा दिखाई देते हैं। इससे आगे केरी पुल को पार करके शाहपुर, डूंगी मनियालां जैसे छोटे– छोटे गांव आते हैं। इसके बाद ''चिट्टी बकरी'' तथ ''रटल–बसाली'' नामक दो महत्वपूर्ण गांव हैं, यहां अधिकतर गूजर और बक्करवाल लोग रहते हैं। दूध, मक्खन, घी आदि यहां प्र्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है।

केरी से 10 किलोमीटर ''चिट्टी बकरी'' से एक नव निर्मित सड़क मार्ग पुंद की ओर जाता है जो बी.जी. ''भिंबर–गली'' में जा मिलता है। इस मार्ग के पूर्ण रूप से निर्मित होने पर जम्मू से पुंछ का फासला 40 किलोमीटर कम हो जाएगा। केरी से 28 किलोमीटर की दूरी पर ''बारात–गला'' नाम का एक गांव है। प्राचीन काल में जब पुंछ – कश्मीर

अथवा पेशावर–मुजफराबाद, मीरपुर कोटली से पैदल आने–जाने वाली बारातें यहां रात भर रुकती थीं। इसी कारण इस स्थान का नाम ''बारात–गला'' पड़ा है।

यह स्थान पत्नीटाप से मिलता–जुलता है। यहां से पी.ओ.के. मात्र 300 गज की दूरी पर है। इस स्थान पर पानी के छोटे–छोटे चश्मे तथा खुवानी के बगीचे अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। यहां बी.आर.ओ. द्वारा निर्मित एक गैस्ट हाउस भी है। वीर–भद्रेश्वर से 7 किलोमीटर पहले ''ठंडी–कस्सी'' गांव आता है। यहां एक बहुत बड़ा मैदान है जो पड़ा–कोटली के नाम से सुप्रसिद्ध है। यहां पर लोग व्यापार के लिए अच्छी–अच्छी नस्ल की गाय, बैल, भैंस आदि बेचने के लिए लाते और खरीदते हैं।

ठण्डी कस्सी से एक अन्य नव निर्मित मार्ग लाम–लड़ौका से होता होआ पुंछ को नौशहरा से जोड़ता है। इस का निर्माण होने पर जम्मू से पुंछ वरास्ता झंगड़–बैरी पत्तन मात्र 190 कि.मी. रह जाएगा। ठण्डी कस्सी से ही 5 किलोमीटर वीर–भद्रेश्वर का सीढ़ीनुमां क्षेत्र प्रारम्भ हो जाता है और देर से ही ऊंची चोटी पर से घंटियों की लम्बी–लम्बी कतारों की फैंसिंग के मध्य एक अद्भुत प्राचीन वीर–भद्रेश्वर मंदिर तथा इस के निकट अन्य छोटे–छोटे मंदिरों का समूह दिखाई देता है। यह एक मात्र सर्वाधिक शांत एवं सर्वमान्य प्राचीन अध्यात्मिक स्थल है। यहां पर आए प्रत्येक श्रद्धालु की मन्नतें पूरी होती हैं और वह सब लोग अपनी मन्नत पूरी हो जाने पर पुनः यहां आकर घण्टी बांधते हैं तथा हलवे का प्रसाद चढ़ाते हैं।

प्रतिमाओं की जानकारी– इस मंदिर के अंदर प्रतिमाओं में निम्नलिखित अति उल्लेखनीय हैं– 1. नंदी–गण, 2. डेढ फुट ऊंचा शिवलिंग, 3. 50 किलो वज़न की वीर–भद्रेश्वर की प्रतिमा जिसके साथ अधकटे सीस में राजा दक्ष तथा रानी मेनका की लघु–प्रतिमाएं, 4. साढ़े तीन फुट ऊंची भगवान शिव की प्रतिमा, 5. काली मां की मूर्ति, 6. शेष नाग की मूर्ति, 7. नटराज की मूर्ति 8. पांडवों की समाधियां, 9. भैरोंनाथ का मूर्ति 10. इस मठ के सर्व श्रेष्ठ महन्त बाबा गोधड़ नाथ की समाधी, 11. कुछ अन्य साधुओं की समाधियां, 12. अनेक शिला रूपी कलाकृतियों के

अतिरिक्त इस मंदिर के परिसर में 50 से 100 किलो वज़न के पत्थर रूपी मुगदर जो प्राचीन क्रीड़ा के काम आते थे, इस मठ के प्रांगन में मौजूद हैं।

वीर–भद्रेश्वर से दिखने वाले अन्य महत्वपूर्ण स्थल– राजौरी–पुंछ क्षेत्र के इस अति विचित्र मंदिर परिसर में खड़े होकर दूर–दूर तक नज़र दौड़ाने से अनेकों प्राकृतिक एवं स्वर्णिम दृश्यों के अतिरिक्त यहां से पूर्व दिशा में माता वैष्णो की त्रिकुटा पर्वत श्रृंखला के मध्य माता का भव्य मंदिर परिसर व भैरो घाटी दिखाई देते हैं। दक्षिण की ओर सीढ़ीनुमा किला–दरहाल, मंगला देवी का किला, मंगला–माता झंगड़ तथा पश्चिम की ओर पी.ओ.के. स्थित पीर पंचाल की करजाई घाटी में माता रंजोती, वाण गंगा तथा नंदा देवी पर्वत श्रंखला के अतिरिक्त कई रमणीय स्थल देखने को मिलते हैं। इस मंदिर के दाई ओर स्वच्छ एवं मीठे जल के अनेक छोटे–छोटे स्रोत मौजूद हैं।

इस के पश्चिम की ओर एक अति स्वच्छ जुल–कुण्ड है जो आस–पास के कई गांवों की सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध करवाता है और अति स्वास्थ्य वर्धक स्थल माना जाता है। इस के अतिरिक्त अनेक क्षेत्र जैसे खुई रट्टा वैली, लंगर, प्यालां, खमाह, माई–मंगलां, खड–मौचियां, खड–ब्राह्मणां, मीरपुर, कोटली, मंगलां डैम तथा भिम्बर शहर साफ–साफ दिखाई पड़ते हैं। पूर्णिमा की चांदनी रातों में एक विशाल अजगर के सदृश्य बल खाती जेह्लम नदी का अति प्राकृतिक स्राव मन को गहराइयों तक छू लेने वाले अलौकिक दृश्य सा आभास करवाता है। यहां से मुज़फराबाद के निकट के दो अति विशिष्ट सिद्ध–पीठ, बाण–गंगा एवं माता – रंजोती यहां से दिखाई देते हैं।

वीर–भद्रेश्वर मठ के रहस्यमय चमत्कार– वीर–भद्रेश्वर क्षेत्र में सिद्ध बाबा गोधड़ नाथ के अत्यंत चमत्कार सुनने में आते हैं। कहा जाता है कि अंग्रेज सरकार को जब इस चमत्कारी बाबा की विशेषता का आभास हुआ तो उन्होंने यहां पर एक फौजी छावनी बनाने के लिए इस मठ पर चढ़ाई करके इसे अपने अधिकार में लेना चाहा और घोड़ों आदि सहित पूरी फौज की टुकड़ी को यहां चढ़ाई करने के लिए भेज दिया गया।

उधर बाबा गोधड़ नाथ जी को अपनी योग–शक्ति एवं दिव्य दृष्टि से यह ज्ञात हो गया कि यहां कुछ गोरे लोग आकर मांस आदि का सेवन कर इस स्थान की पवित्रता को भंग करने वाले हैं। इस से पूर्व कि वह इस दिव्य स्थान पर पंहुंचे बाबा गोधड़ नाथ ने अपवनी योग माया से सारी की सारी फौज को गिरा दिया और घोड़ों सहित अधिकांश फौज यहां पंहुचने से पहले ही नष्ट हो गई।

कुछ लोगों का कहना है कि यह गोरा फौज यहीं पर शिला–पत्थर बन गई जिसकी प्रतिमाएं आज भी जल–स्रोत के निकट देखने को मिलती हैं।

यह भी कहा जाता है कि उस योगी ने जल देवता के आगे प्रार्थना की कि इस जल की पवित्रता एवं प्रशंसा के कारण ही यह लोग यहां पर आ रहे हैं। यह लोग इसे प्रदूशित कर देंगे। अतः उन्होंने जल–स्रोत के ऊपर चक्की का पाट रख दिया। जिससे केवल मठ को जितना जल पर्याप्त था रह गया बाकी सारा जल–स्रोत गुप्त होकर किसी अन्य स्थान से प्रकट हो गया। कहा जाता है कि इसी जल ने यहां से करीब 5–6 कि.मी. पश्चि की ओर एक झरने का रूप धारण कर लिया। पूरी बर्तानियां फौज के दो अफिसर बचे। तब उन्होंने कुछ राशन और चांदी के रुपये आदि व प्रतिदिन का खर्च कई टीन तेल, रुई आदि यहां देना शुरू कर दिया।

बाण गंगा का मंदिर परिसर– जिस प्रकार इस मठ पर गोधड़ नाथ जी के चमत्कारों की चर्चा थी इसी प्रकार यहां से पश्चिम की ओर खुई–रट्टा के निकट बाण–गंगा की चोटी पर एक अन्य सिद्ध पुरुष बाबा काशी दास जी की चर्चा दूर–दूर तक फैली हुई थी। और आस–पास के अनेक हिन्दू गांवों के लोग अपना कुल गुरु मानते थे तथा उनको 1008 साधुओं की संज्ञा दी जाती है। कहा जाता है कि एक बार इसी क्षेत्र के कुछ यात्री कुम्भ पर्व पर गंगा स्नान के लिए हरिद्वार जा रहे थे। महात्मा जी उनकी यात्रा के उद्देश्य को अपनी दिव्य दृष्टि से समझ गए और उन्हें यह ज्ञात हो गया कि यह बेचारे उस स्थान पर कुम्भ स्नान के मुर्हूत के समाप्त होने तक पंहुचने में असमर्थ हैं।

अतः महात्मा जी ने भगवती गंगा का आह्वान किया और उसी स्थान पर अपने उन भक्तों को कुम्भ स्नान करवाने का चमत्कार करने के उपरांत ही उस स्थान का नाम बाण गंगा पड़ गया। यहां पर प्राचीन काल से बैसाखी का भव्य मेला लगता है और दंगल आदि का आयेजन होता है। कहा जाता है कि बाबा काशी दास जी जो बाद में काशी गिरी के नाम से जाने जाते रहे हैं, के साथ एक विराट बाबा भैरो नाथ सिंह तथा एक इच्छा धारी नाग (शेष नाग) सदा ही उनकी ध्यान समाधी के दौरान अंग रक्षक बन कर रहते थे। जिन्हें सवा लाख सेवकों के गुरु होने का वरदान प्राप्त था। एक मान्यता के अनुसार यह पांचों वरदान उन्हें जम्मू की पवित्र शिव–खोड़ी गुफा के बाद, कई वर्षों तक अमरनाथ जी की गुफा में तपस्या करने के उपरांत शिवजी ने साक्षात् दर्शन देकर स्वयं दिए थे।

माता रंजोती का मंदिर–बाण गंगा के उत्तर की ओर पर्वत श्रंखला में रंजोती कूट पर माता रंजोती का भव्य मंदिर परिसर आज भी वहां मुस्लिम निवासियों के लिए एक रहस्यमय पूजनीय स्थल है। यह एक अदृश्य मंदिर है। जिस का दृष्टांत माता रंजोती ने प्राचीन काल में वहां के किसी निवासी को दिया था – कि जिन के यहां संतान की उत्पति न हो वह उस स्थान पर आ कर मन्नत मांगें तो उन की मनोकामना पूर्ण होगी। अतः आज भी वहां के मुस्लिम लोग उस भव्य मंदिर परिसर पर आकर अपने बच्चों के मुंडन संस्कार आदि करवाते हैं तथा इस स्थान का नाम उन्होंने माता रंजोटी कर दिया है।

इस के अतिरिक्त वीर–भद्रेश्वर मठ के मंदिर परिसर में किसी विशेष अवसर जैसे शिव–रात्रि आदि पर बुड्ढे अमरनाथ तथा बाबा अमरनाथ की तरह एक भव्य कबूतरों के जोड़े के दर्शन भी होते हैं। इस मंदिर में 10 मिनट बैठकर ध्यान लगाने से जितनी शांति एवं आनंद का अनुभव होता है शायद ही किसी अन्य स्थान पर होता हो।

किस प्रकार वीर–भद्रेश्वर का नाम "पीर–बडेसर" पड़ा–

एक किंवदन्ति के अनुसार वीर–भद्रेश्वर की चोटी पर समुद्र तल से 4532 फुट की ऊंचाई पर एक गांव गरन है। इस गांव का मुखिया बड़ा दयालु और नेक इंसान था। उस का इकलौता बेटा बचपन से ही चलने–फिरने में असमर्थ था और सदा चारपाई पर पड़ा रहता था। बच्चे

की इस दशा के कारण मुखिया बड़ा दुखी रहता था। उसकी तंदरुस्ती के लिए कई स्थानों पर मन्नतें मांगने के उपरांत वह विधिवत वीर–भद्रेश्वर के मठ पर जाने लगा।

एक दिन अचानक मुखिया तथा उसके घर के सभी सदस्य दूर किसी काम के लिए गए हुए थे। बेटा अकेला बरामदे में चारपाई पर पड़ा था। उसने देखा कि एक अद्‌भुत भयानक जंगली जानवर उछल कूद करता हुआ उसकी ओर आ रहा था। लड़का घबराहट में आकर उछल कर अंदर चला गया और दरवाजे के पीछे रखे एक तेज औजार से उस पशु पर वार किया। और देखते ही देखते वो पशु अंतर्धान हो गया। इस घटना के बाद बालक बिलकुल ठीक होकर चलने–फिरने लगा। जब मुखिया व उसके परिवार वाले बापस लौटे तो यह चमत्कार देखकर अति प्रसन्न एवं आश्चर्यचकित हो उठे। मुखिया ने यह घटना गांव वालों को सुनाई। वो अपने घर के सभी सदस्यों तथा गांव वालों को साथ लेकर वीर–भद्रेश्वर मठ पर गया और घी, गुड़, चावल, आटा, दालें आदि सामग्री ले जाकर एक भव्य भंडारे का आयोजन किया। और सभी के सामने इस मंदिर में बिनती की कि , ''हे बाबा आप कइयों के लिए देवता, गुरु, सिद्ध पुरुश तथा संत हो, परंतु मेरे लिए आप एक महान पीर हो। आप धन्य हो। आप ने मेरे तथा मेरे समस्त परिवार के ऊपर बहुत बड़ी कृपा की है । हम आपके सदैव आभारी रहेंगे।'' इसके पश्चात इस स्थान के आस–पास के रहने वाले सभी निवासी इसे ''पीर बडेसर के नाम से ही पुकारने लगे।

यूं भी ऊंची चोटी को पीर कहा जाता है। (यथा पीर पंचाल) हम चाहे किसी भी नाम से पुकारें परंतु इस भव्य दिव्य–स्थान पर आए समस्त हिन्दू , मुस्लिम, सिक्ख, बौद्ध तथा ईसाई मत के श्रद्धालु यहां एक अद्‌भुत आनंद एवं शांति का अनुभव करते हैं। और इस विचित्र अध्यात्मिक–स्थल में अपनी इच्छानुसार पूजा–अर्चना करते हैं एवं अपनी–अपनी प्रत्येक मन्नत पूरी हो जाने पर यहां पर एक बड़ी घंटी बांध कर जाते हैं। इस मंदिर परिसर के अंदर तथा बाहर अनेक घंटियों की बड़ी–बड़ी कतारें दिखाई देती हैं।

वीर–भद्रेश्वर कैसे पंहुचें– देवादिदेव भगवान शिव के अति विचित्र, अद्‌भुत शिव गण रूपी संसार–भर की एक मात्र अति शांत

अध्यात्मिक स्थली जो की जम्मू–कश्मीर के पश्चिमीं किनारे पर हिमालय की शैवालिक–पर्वत श्रंखला की उत्तर–पश्चिम चोटियों के समूह के मध्य स्थित इस महत्वपूर्ण तीर्थ स्थल पर पंहुचने के लिए राजौरी जनपद के डिप्टी कमीश्नर के कार्यालय से वहां जाने के लिए लिखित अनुमति लेनी पड़ती है। यह अनुमति ग्रुपस में भी मिल सकती है। चालक का नाम पता सहित गाड़ी नंबर आदि तथा यात्रा की तिथि के विषय में लिखित रूप में देना पड़ता है। अतः राजौरी से चलकर सांयकाल तक वापिस राजौरी, कटड़ा या जम्मू तक सुगमता से पंहुचा जा सकता है।

वीर–भद्रेश्वर शिव मंदिर ससालकोट डुंगी– जिला राजौरी के सीमावर्ती क्षेत्र की एक ऊंची चोटी पर स्थित वीर भद्रेश्वर मंदिर परिसर से मात्र 30 कि.मी. नीचे पहाड़ी क्षेत्र के प्रारंभ से पहले डूंगी में यहां के प्रमुख गांव वासियों तथा इस क्षेत्र में कार्यरत जागरूक एवं श्रद्धावान विभिन्न विभागों के सरकारी कर्मचारियों के आर्थिक सहयोग के फलस्वरूप ससालकोट बावली डूंगी में एक अति सुंदर वीर–भद्रेश्वर शिव मंदिर का निर्माण हुआ है जो वीर–भद्रेश्वर का बेस– कैम्प माना जा सकता है। वर्ष 2006 में शिवरात्रि के अवसर पर इस भव्य मंदिर में सफेद संगमरमर के डेढ फुट ऊंचे शिवलिंग की स्थापना की गई।

ooo

अखनूर के सांस्कृतिक स्थल

—यशपाल निर्मल

अखनूर तहसील का जम्मू–कश्मीर राज्य में अपना एक विशेष महत्व है। दंत कथाओं के अधार पर अखनूर को राजा विराट की नगरी भी माना जाता है। लोक विश्वासों के अधार पर महाभारत काल में अखनूर राजा विराट की नगरी थी और पांडवों ने अपना अज्ञातवास यहीं पर गुजारा था। इस आलेख का आधार भी अखनूर क्षेत्र के प्रसिद्ध सांस्कृतिक स्थलों के बारे में जन–मानस में प्रचलित दंत कथाएं और लोक विश्वास ही हैं।

अखनूर के प्रसिद्ध कामेश्वर मंदिर का वृतांत पुराणों में भी मिलता है। अखनूर के ही अम्बारां नामक स्थान से खुदाई के दौरान मिट्टी की प्राचीण मूर्तियें और वर्तन मिले हैं जिनका सर्वेक्षण करने के बाद पुरातत्वविदों ने उनका संबंध हड़प्पा संस्कृति से जोड़ते हुए उनका समय हड़प्पा कालीन बताया है। प्राचीण दुर्ग, महल, मंदिर, आदि किसी भी स्थान के इतिहास, धर्म, संस्कृति, और सभ्यता के परिचायक होते हैं।

इतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो जम्मू–कश्मीर एक महत्वपूर्ण राज्य है। इसके बाकी क्षेत्रों की तरह ही अखनूर का भी अपना एक महत्वपूर्ण इतिहास रहा है। इसके धार्मिक, सांस्कृतिक, इतिहासिक एवं पर्यटक स्थल जम्मू–कश्मीर राज्य को सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध बनाने में अपना विशेष स्थान रखते हैं।

अखनूर में कामेश्वर मंदिर, जिया पोता घाट, अखनूर का किला, गुरुद्वारा संत बाबा संदर सिह जी, पांडव गुफा, तीर्थ स्थान सुमाह, कुफ्फी, बावा बल्लो देवस्थान मथवार, बावा मईमल्ल देवस्थान डोरी डगेर, आदि

कई प्रसिद्ध दार्शिनिक स्थल हैं। वैसे तो अखनूर तहसील में हर घर में किसी न किसी कुलदेवते, लोकदेवते या सती की देहरी देखने को मिलती है जो यहां के लोगों की आस्था की प्रतीक है। लेकिन उन में से कुछ महत्वपूर्ण दार्शनिक स्थल निम्नलिखित हैं।

चंद्रभागा (चिनाब):– अखनूर में से बहने वाली प्रमुख नदी चंद्रभागा (चिनाब) को यहां के लोग गंगा के समान पवित्र मानते हैं। वास्तव में दो नदियों चंदर और भागा के संगम से बनने के कारण इसका नाम चंद्रभागा पड़ा। स्थानीय भाषा डोगरी में इसे चन्हाऽ नाम से जाना–पुकारा जाता है। दिन–त्यौहार पर इसमें स्नान करने का विशेष महत्व है। हर वर्ष हजारों लोग यहां पर घूमने आते हैं। चंद्रभागा अखनूर के लोगों की जीवन रेखा है। यही सिंचाई का मुख्य साधन भी है। इसके तट पर जिया पोता घाट एक इतिहासिक महत्व का स्थान है यहां पर 17 जून वर्ष 1822 में महाराजा रणजीत सिंह ने स्वयं महाराजा गुलाब सिंह का राज तिलक करके उन्हें जम्मू–कश्मीर का राजा घोषित किया था।

अखनूर का किला:– अखनूर का किला चंद्रभागा के किनारे पर बना हुआ है। मुगल कालीन दुर्गों के नमूने पर अधारित इस दुर्ग का निर्माण कार्य राजा तेग सिंह ने शरू करवाया और 19वीं शताब्दी के शुरू में राजा आलम सिंह ने इसका निर्माण कार्य पूरा कावाया। सन् 1822 ई0 में महाराजा गुलाब सिंह ने अपने राज्याभिषेक के बाद इस दुर्ग की मुरम्मत करवाई थी। इस दुर्ग के साथ ही एक महाकाली का प्राचीण देवालय भी है। लोक विश्वास है कि यह देवालय भी उतना ही पुराना है जितना यह दुर्ग।

कामेश्वर महादेव मंदिर :– कामेश्वर तीर्थ का वर्णन कई पुराणों और उप–पुराणों में उपलब्ध है। वामन पुराण की कथा अनुसार भक्त प्रह्लाद ने कामेश्वर महादेव के दर्शनों के लिए प्रार्थना की थी। पद्म पुराण के आदि खंड में भी देवका तट पर कामेश्वर महादेव के मंदिर का वर्णन मिलता है। अखनूर का प्रसिद्ध कामेश्वर मंदिर भी भगवान शिव का ही तीर्थ

स्थान है। यह पवित्र स्थान पुराणक महत्व के साथ–साथ लोक आस्था का भी प्रतीक है। स्थानीय लोगों की माने तो वह इस मंदिर का संबंध भी महाभारत के साथ जोड़ते हुए कश्मीर के वीर राजा बर्बरीक की कथा के साथ जोड़ते हैं। जिसमें राजा बर्बरीक महाभारत का युद्ध देखने जाते हैं।

युद्धक्षेत्र में श्री कृष्ण बर्बरीक से पूछते हैं कि वह किस और से लड़ेगा। बर्बरीक कहते हैं कि वह तो मात्र युद्ध देखने आया है किंतु अगर आवश्कता पड़ी तो वह हारने वाली सेना की तरफ से लड़ेगा। भगवान कृष्ण को मालूम हो गया था कि बर्बरीक को युद्ध में हराना असंभव है उन्होंने बर्बरीक का सिर अपने सुदर्शन चक्र के साथ काट कर धड़ से अलग कर दिया। और उसे वरदान दिया कि वह युद्ध का हाल देख सकेगा।

युद्ध के अंत में श्रीकृष्ण जी पांडवों सहित बर्बरीक के सिर के पास आए और उसे पूछा कि युद्ध में सबसे ज्यादा योद्धे किसने मारे, उसने उत्तर दिया–प्रभु मुझे तो सिर्फ सुदर्शन चक्र ही नजर आता था। कहते हैं युद्ध समाप्ति के बाद जब बर्बरीक का धड़ घोड़े पर सवार हो कर घर लौट रहा था तो वह अखनूर में उस स्थान पर गिरा था यहां पर अब कामेश्वर मंदिर है। कामेश्वर महादेव का यह मंदिर डुग्गर के प्रमुख तीर्थ स्थलों में अपना विशेष स्थान रखता है।

गुरुद्वारा संत बाबा सुंदर सिंह जीः– अखनूर नगर में चंद्रभागा (चिनाब) के किनारे बना हुआ गुरुद्वारा संत बाबा सुंदर सिंह जी लोगों की आस्था का केंद्र है। सभी धर्मों के लोग बाबा जी के दरबार में हाजिरी लगा कर उनका आर्शीवाद प्राप्त करते हैं। संत सुंदर सिंह जी का जन्म सन् 1887 ई0 में पाकिस्तान के जिला गुजरात के एक छोटे से गांव कोटली बाबा फकीर चंद में हुआ था। इनको बचपन से ही प्रभु भक्ती के प्रति अटूट विश्वास और असीम प्रेम था। लोक विश्वास है कि 12 वर्ष की आयु में बाबा जी अखनूर आए थे। उस समय इनकी मुलाकात संत दीदार सिंह जी के साथ हुई ।

वर्तमान समय में जिस स्थान पर गुरुद्वारा बनाया गया है यहां पर एक गुफा होती थी। उस गुफा में बाबा जी ने सात वर्ष तक तपस्या की थी। इसीलिए यह गुरुद्वारा तपोस्थान के नाम से भी प्रसिद्ध है। अखनूर नगर में चंद्रभागा (चिनाब) के किनारे बने इस गुरुद्वारे की जगह की तलाश में ही कई वर्ष लग गए। लोक विश्वास है कि बाबा जी का तपोस्थान होने के कारण यहां पर पाप, रोग, शोक , संताप और निर्धनता तो दूर होती ही है मन की मुरादें भी पूरी होती हैं।

बलिदानी बाबा मईमल्ल देवस्थानः– खौड़ ब्लाक के डोरी डगेर में स्थित बाबा मईमल्ल का तीर्थ स्थान लाखों डुग्गर वासियों की आस्था का केंद्र है। वह एक महान आत्मा थी जिसने सत्य, धर्म, न्याय और अपने अधिकार के लिए अपने प्राणों का बलिदान दे दिया। बाबा मईमल्ल का तीर्थ स्थान पहाड़ों और प्रकृति के सुंदर दृष्यों से घिरा गांव डोरी डगेर अखनूर शहर से 40 कि0मी0 दूर उत्तर पश्चिम दिशा में है।

बाबा मईमल्ल का जन्म 15वीं शताब्दी में उप्पल जाति के ब्राह्मण वंश में हुआ था। परमात्मा की भक्ती में लीन रहने वाले बाबा जी बड़ी ही विलक्ष्ण बुद्धि के स्वामी थे। लगभग 12 वर्ष की आयू में इन्होंने खेतीबाड़ी को अपनी जीविका का साधन बनाया। सांमतवाद के उस युग में जगीरदारों एवं सांमतवादियों का ही बोलबाला था। किसानों पर कई प्रकार के अत्याचार किए जाते थे। परंतु किसी में भी इन अत्याचारों के खिलाफ अवाज उठाने की हिम्मत नहीं थी क्योंकि अपने खिलाफ उठने वाली आवाज को यह जगीरदार एवं सांमतवादी हमेशा के लिए बंद कर देते थे।

बाबा मईमल्ल के पास अपनी जमीन कम थी। उसने नाथल गांव के जगीरदार योआला सिंहनिया से खेती के लिए जमीन ली। पैदावार का चौथा हिस्सा जगीरदार को देना तय हुआ। परंतु जब फसल हुई तो जगीरदार ने आधी फसल मांगनी शुरू कर दी। जिसके विरोध में बाबा जी ने आत्मबलिदान दे करके अपने समय के किसानों को अत्याचारों से मुक्ती दिलाई। डोरी डगेर बाबा जी के जन्म स्थान पर उनकी याद में एक भव्य

मंदिर का निर्माण किया गया है यहां पर छह–छह महीनों में मेल आयोजित की जाती है। लाखों लोग श्रद्धा से माथा टेक कर बाबा जी का आर्शीवाद प्राप्त करते हैं और अपनी मुरादें पूरी करते हैं।

बाबा धर्मचंद देवस्थानः– यह देवस्थान अखनूर शहर से 9 कि0मी0 दूरी पर स्थित है। यह देवस्थान चिब विरादरी से संबंधित है। चिब विरादरी के लोगों के अनुसार 15वीं शताब्दी के आस पास पंजाब के साथ लगते सूबा गुजरात के पास एक रियासत थी जिसका नाम भिंबर था। वहां उस समय राजा धर्मचंद राज करते थे। राजा धर्मचंद नेक और ईमानदार तो थे ही वह रहस्यमयी बिमारियों का इलाज करने में भी माहिर थे। उस समय का दिल्ली का बादशाह भी किसी रहस्यमयी बिमारी से पीड़ित था। उसने ऐलान कर रखा था जो उसका इलाज करेगा वह अपनी बेटी की शादी उस से करवा देगा। बादशाह को राजा धर्मचंद के बारे में पता चला तो उसे दिल्ली बुलवाया गया।

इलाज के बाद ऐलान के मुताविक राजा को बादशाह की बेटी के साथ शादी करनी थी मगर राजा तो पहले से शादीशुदा था। इसके बावजूद बादशाह ने जबरदस्ती राजा का धर्मांतरण करवाया और बेटी की शादी उस से करवा दी। लेकिन राजा किसी तरीके से वहां से भागने में सफल हो गया। किंतु बादशाह के सिपाहियों के साथ युद्ध में राजा शहीद हो गया। राजा धर्मचंद की समाधी आज भी भिंबर, पाकिस्तान में खानकाह नाम से प्रसिद्ध है। 1947 में भारत पाक विभाजन के बाद बिस्थापित हो कर भारत आए चिब राजपूतों ने लाखों रुपये खर्च करके अखनूर के नड्ड गांव में बाबा धर्मचंद की याद में एक खूबसूरत स्मारक का निर्माण किया है। यह स्थान धार्मिक महत्व के साथ–साथ एक महत्वपूर्ण पर्यटन स्थल भी है।

तीर्थस्थान सुमाहः– अखनूर शहर से 10–12 कि0 मी0 की दूरी पर पहाड़ों में बसे सुंगल सुमाह गांव के पास स्थित यह तीर्थ सारे डुग्गर में प्रसिद्ध है। मान्यता है कि यहां पर एक पहाड़ी से बूंद–बूंद करके गंगाजल टपकता रहता है। इस तीर्थ से संबंधित दंद कथाओं की माने तो इसका

महत्व सतयुग, त्रेतायुग, द्वापर और अब कलियुग में भी बरकरार है। हर वर्ष लाखों लोग इस स्थान पर आ कर पहाड़ी से टपकने वाले गंगाजल में स्नान करके अपना लोक परलोक सुधारते हैं। इस तीर्थ का संबंध सतयुग में अगस्तमुनि के शिष्य सुतिक्षण मुनि से है। उन्हीं के नाम पर इस स्थान का नाम सुमाह पड़ा है।

बकौर का राधाकृष्ण मंदिरः—अखनूर कसबे से 22 कि0 मी0 दूर चिनाब के किनारे स्थित गांव बकौर का राधा कृष्ण मंदिर भी स्थानीय लोगों के लिए विशेष महत्व रखता है। दंत कथाओं के अनुसार गांव बकौर राजा विक्रमादित्य के राज के अंर्तगत आता था। इस मंदिर की एक विशेषता यह भी है कि इसमें श्री श्री 1008 बावा मौनी जी महाराज की गद्दी भी है। इस गद्दी के वर्तमान महंत श्री श्री 108 श्री केशव दास जी के अनुसार बावा मौनी जी पहले लाहौर रहते थे। परंतु किसी कारणवश वह यहां आ गये। लगभग 1656 ई0 में उन्होंने बकौर गांव में मंदिर वनवाया।

बावा मौनी जी महाराज एक सिद्ध पुरुष थे । आए दिन लोगों को अपनी शक्ती से चमत्कार दिखते रहते थे। एक बार बावा मौनी जी के पास एक महात्मा जी आए जो घोड़ी पर बैठे हुए थे। उन्होंने बावा मौनी जी को कहा चलो दंगल देखने चलें। बावा मौनी जी जो उस समय दीवार पर बैठे हुए थे, उन्होंने दीवार को कहा चलो महात्मा जी के साथ चलें तो वह दीवार ही चल पड़ी । इतना देखते ही वह महात्मा मौनी महाराज के चरणों में गिर पड़ा। एक बार उनके पास एक साधुओं की टोली आई। उन्होंने बावा मौनी जी को कहा कि हमने दूध पीना है और लौंग की धूनी तापनी है। मौनी जी महाराज ने उनको एक गड़वा दूध दिया जिसे सभी साधुओं ने जी भर कर पीया मगर दूध फिर भी समाप्त नहीं हुआ। फिर बावा जी ने एक बैर के वृक्ष को पकड़ कर हिलाया तो नीचे लौंगों का ढेर लग गया। यह देख कर सभी साधु बावा मौनी जी महाराज के चरणों में गिर कर क्षमा याचना करने लगे। इतना समय बीतने के बाद भी बकौर

मंदिर के प्रति लोगों की आस्था , श्रद्धा और विश्वास में कोई कमीं नहीं आई है।

दरगाह बाबा फैज बख्श बुखारीः—जम्मू शहर से 30 कि0 मी0 और अखनूर शहर से मात्र दो कि0 मी0 की दूरी पर जम्मू–पलांवाला सड़क पर स्थित गांव बल्ले दे बाग, गुड़ा ब्राह्मणा में बाबा फ़ैज बख्श बुखरी की दरगाह है। इस दरगाह के भीतर प्रसिद्ध सूफी संत बाबा फ़ैज बख्श बुखारी की समाधी है। यहां पर पागल कुत्ते के काटे मरीजों का इलाज होता है। मान्यता है कि फैज बख्श बुखारी का जन्म 1586 ई0 में साउदी अरब में हुआ था। जब वह जवान हुए तो अपनी मातृ भूमि छोड़ कर बुखारा आ गए। और फिर परमात्मा का भजन करते करते अफगानीस्तान होते हुए भारत आ गए।

जम्मू में विभिन्न स्थानों पर रहने के बाद गांव बल्ले दे बाग, गुड़ा ब्राह्मणा में बाबा फ़ैज बख्श बुखारी ने समाधी ले ली। बाबा जी अपने जीवन काल में भी पागल कुत्ते के काटे मरीजों का इलाज करते रहे हैं। इस स्थान की महानता अभी तक बरकरार है। हर वर्ष हजारों श्रद्धालु दरगाह में माथा टेक कर बाबा का आर्शीवाद प्राप्त करते हैं।

ooo

लेह–लद्दाख का सामाजिक और सांस्कृतिक परिदृश्य

–सुभाष चंद्र ठाकुर

लद्दाख रियासत जम्मू कश्मीर का भूभाग रहा है। इस क्षेत्र को सन् 1834 ई. में महाराजा गुलाब सिंह के बहादुर जनरल ज़ोरावर सिंह द्वारा जम्मू–कश्मीर में मिलाया गया था। अब लद्दाख एक केंद्र शासित प्रदेश है। भौगोलिक दृष्टि से लेह–लद्दाख अतयंत पर्वतीय श्रंखलाओं से घिरा हुआ है। इस क्षेत्र में एक तरफ पाकिस्तान की अंतराष्ट्रीय सीमा है तो दूसरी तरफ से चीन की अंर्तराष्ट्रीय सीमा लगती है। जिसके कारण यहां भारतीय वायु सेना थल सेना पर्याप्त मात्रा में तैनात रहती है।

लद्दाख दो शब्दों के मेल से बना हुआ है। 'ल' का अर्थ है दर्रा और 'दाख' का अर्थ है एक से अधिक (स्थानीय बोली के अनुसार)। ऐसी धरती या भूमि जहां पर कई दर्रे हों (Land of Several Passes) इस क्षेत्र में दो जिले हैं– लेह औरे कारगिल। मेरे इस आलेख का केंद्र बिंदू लेह जिला है जहां के परिवेश पर प्रकाश डालना मेरा उद्देश्य है।

लद्दाख क्षेत्र में दो धर्मों के लोग बसते हैं। भोट और मुस्लमान। परंतु यहां पर भोट बहुसंक्ष्यक हैं। अर्थात् लगभग 70 प्रतिशत भोट जनजाति के लोग रहते हैं और केवल 30 प्रतिशत मुस्लिम बसते हैं। देखा जाए तो विशेषतः भोटों का ही यहां पर प्रभुत्व है। भारत सरकार के अनसूचित जनजाति मामले के मंत्रालय ने पूरे लद्दाख क्षेत्र के लोगों को अनुसूचित जनजाति की श्रेणी में रखा हुआ है। चाहे वह किसी भी जाति या धर्म से संबंध रखता हो।

खानपान– जब हम भोट समाज के खानपान की बात करते हैं तो अन्य राज्यों, लोगों, जातियों और क्षेत्रों की अपेक्षा अनेक प्रकार की विभिन्नताएं दिखाई देती हैं। जलवायु के अनुसार इनका खानपान पाचन तंत्र के अनुकूल है। विशेषकर भोट लोग मांस मंदिरा के शैकीन हैं। भोट लोगों का छंग एक प्रिय पेय है। जिस प्रकार भारतवर्ष के अनय राज्यों और क्षेत्रों के लोग मधुशाला में जाकर बीयर पीना पसंद करते हैं ठीक उसी प्रकार से यहां के लोग छंग पसंद करते हैं।

छंग एक गाढ़ा और सफेद रंग का द्रव होता है, भोट लोग शरद ऋतु में दिन के समय ही छंग पीकर मस्त रहते हैं, जिससे कहते हैं कि शरीर बहुत गर्म रहता है। स्थानीय लोग इस प्रिय पेय को जौ, गेंहूं और चावल के साथ मसाला डालकर तैयार करते हैं। जिस प्रकार हिन्दू धर्म के लोग धर्मिक अनुष्ठान करते समय गंगा जल का प्रयोग करते हैं। ठीक उसी प्रकार भोट गुम्पाओं और घरों में पवित्र कार्य करते समय छंग का अवश्य प्रयोग करते हैं।

देसी शराब का भी यह लोग खूब प्रयोग करते हैं। मांस भी इनकी प्रिय खुराक है। यह लोग गाय, भैंस, याक, भेड़, बकरी और कई प्रकार के जंगली जानवरों का मांस बड़े चाव से खाते हैं। विशेषकर याक तिब्बत देश का लम्बे रेशमी बालों वाले सांड के मास को स्थानीय लोग अधिक पसंद करते हैं। लेह के मुस्लमान तो किसी भी जानवर का हलाल मांस खाते हैं परंतु भोट लोग मरी हुई गाय, याक, ऊंट, भैंस और कई प्रकार के जंगली जानवरों को खा जाते हैं अर्थात् भोट मुर्दा मांस भी खाते हैं।

पर्व त्यौहार– भारत त्यौहारों का देश है। हमारे पर्व और त्यौहार हृदय के विकास में विशेष सहायक हैं। उत्सव हमारे मन में सरलता, करुणा, अतिथि सेवा एवं परोपकार की भावनाएं उत्पन करते हैं। यही कारण है कि भारत जैसा देश त्यौहारों को अधिक महत्व देता है। त्यौहार जीवन और जाति का प्राण हैं। प्रत्येक ऋतु कोई न कोई त्यौहार अपने साथ अवश्य लेकर आती है। त्यौहारों से जीवन की नीरसता दूर होती है

तथा भारतीय धर्म, संस्कृति एवं महापुरुषों के प्रति आस्था बढ़ती है। बच्चों के जीवन में तो त्यौहार उल्लास की सरिता बहा देते हैं।

लेह क्षेत्र में जब हम पर्व त्यौहारों की चर्चा करते हैं तो बुद्ध पूर्णिमा, ईद, मुहर्रम और लोसर आदि कई त्यौहार मनाए जाते हैं परंतु लोसर नाम के त्यौहार का ही नाम प्रमुख रूप से उभर कर सामने आता है। इसका विशेष महत्व है। लोसर मूलतः तिब्बती त्यौहार है। तिब्बत में 'लो' का अर्थ है वर्ष और सर का अर्थ है नया। अर्थात नया वर्ष। तिब्बत का लामावाद जब अन्य हिमालयी क्षेत्रों में फैला तो इस त्यौहार का प्रचलन भी बढ़ा। लेह में इस त्यौहार को बड़े धूम–धाम, हर्षोल्लास और श्रद्धा पूर्वक मनाते हैं।

तिब्बती जन्त्री के अनुसार लोसर के दिन नव वर्ष का शुभारंभ होता है। इस त्यौहार के सिलसिले में स्थानीय लोग कई प्रकार के पकवानों जैसे थुकपा, मोक, थनतु इत्यादि पर अधिक धन व्यय करते हैं। यह पर्व विशेषकर बौद्ध धर्म से संबंधित है। लेह् के मुस्लमानों की इसमें बहुत कम रुचि दिखाई देती है।

लोसर प्रायः दिंसम्बर के महीने में मनाया जाता है इस दिन लोग अपने घरों और लामा गुम्पाओं को सजाते हैं। वे अपने घरों में गृह देवता की मूर्तियों के आगे दीपक और अगरबत्तियां जलाते हैं और आटे की मूर्ति बनाकर चढ़ाते हैं। इस दिन लोग सोकस, एक स्थानीय पकवान बनाकर उस पर रंग चढ़ाया जाता है को बनाकर गृह देवताओं की पूजा अर्चना भी करते हैं।

लोसर के दिन भोट षडाक्षरी मंत्र का जाप करते हैं। भोट अनेक सगे संबंधियों और मित्र जनों के घरों में जाकर एक दूसरे को नववर्ष की शुभकामनाएं देकर छंग का सेवन करते है और गले मिलते हैं। इस त्यौहार के उपलक्ष्य में लोग गुम्पाओं में जाकर क्षेत्र विशेष के लोगों के सुख, समृद्धि, खुशहाली, उन्नति, विकास, तरक्की भाईचारे, सौहार्द, प्रेम, एकता, अखंडता और सद्बुद्धि के लिए मंगल कामना करते हैं। यह त्यौहार लगातार चार–पांच दिनों तक चलता है।

लेह कसबे के साथ नंगी पहाड़ियों पर इन दिनों रात को स्थानीय युवक कई स्थानों पर दीपक जलाकर कसबे की शोभा बढ़ाने में चार चांद लगाते हैं। प्रत्येक घर परिवार में एक नई उमंग और प्रसन्नता देखने को मिलती है। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि इस पर्व में दीपावली जैसा वातावरण, उत्साह और रौनक होती है। कुछ लोग तो खुशी से झूम कर पटाखे भी फोड़ने से गुरेज़ नहीं करते।

पुरुषों के साथ–साथ कई स्त्रियां भी इस त्यौहार का आनंद लेने के लिए छंग और देसी शराब पीकर मस्त रहती हैं। यद्यपि यह पर्व शरद ऋतु में मनाया जाता है, रात का तापमान शून्य से दस पंद्रह डिग्री नीचे होता है परंतु फिर भी स्थानीय लोगों का उत्साह देखते ही बनता है।

इस त्यौहार के उपलक्ष्य पर लामाओं की प्रमुख भूमिका रहती है। गांव में एक प्रमुख लामा के साथ स्थानीय पांच–छह लोग गोंचा (स्थानीय वेशभूषा) पहनकर घर–घर जाकर बधाई देकर छंग, शराब इत्यादि पीकर नव वर्ष की मंगल कामनाएं करते हैं। जिस घर में भी यह समूह जाता है वहां उपहार के रूप में इनको कुछ पैसे भी दिए जाते हैं।

इस त्यौहार का पूरा आनंद लेकर इन पांच–छह लोगों का समूह सतोरमा (पापों का प्रायश्चित करना) करता है। अर्थात लामा पूरे गांव और क्षेत्र के लोगों की तरफ से अपने पुराने गुनाहों और पापों के लिए क्षमा याचना करता है। इस समूह के साथ एक व्यक्ति नकाब पहनकर हास्य व्यंग्य का कार्य करता है और अतिथिगण से वह प्र्याप्त मात्रा में पैसे इकट्ठा करता हैं।

विभिन्न संसकार और रीति रिवाज– किसी व्यक्ति की समाज द्वारा स्वीकृति को संस्कार की संज्ञा दी जाती है। मनुष्य को संस्कार उसके परिवार द्वारा मिलते हैं। जिस व्यक्ति को माता–पिता द्वारा अच्छे संस्कार प्राप्त होते हैं वह समाज में प्रतिष्ठा का भागी बन जाता है। जन्म से मृत्यु तक मनुष्य के सोलह संस्कारों का विशेष महत्व है। ये संस्कार तर्क पूर्ण और साथर्क हैं। ये मानव जीवन के विभिन्न स्थितियों के प्रतीक हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक होने वाले संस्कार वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण

हैं। संस्कार द्वारा गुणों को परिष्कृत कर दोषों को दूर किया जाता है। संस्कारों द्वारा मनुष्य शारीरिक, अध्यात्मिक और बौद्धिक रूप से पुष्ट होता है।

जब हम लेह लद्दाख के भोट समाज के रीति रिवाजों पर दृष्टि डालते हैं तो एक विचित्र सी व्यवस्था देखने को मिलती है। यहां के भोट समाज में स्त्री एक से अधिक जीवित पति रखने का अधिकार रखती है। यदि एक घर में चार भाई है तो केवल बड़े को ही विवाह करने का पूर्ण अधिकार होता है शेष तीन भाई भी उसी औरत के साथ अपना शारीरिक संबंध बना लेते हैं। और इसी व्यवस्था में अपना सारा जीवन व्यतीत कर देते हैं। इस व्यवस्था का प्रमुख कारण गरीबी है। यदि घर में सभी भाई विवाह करते हैं तो ये सभी आय के साधन नहीं जुटा पाते हैं। जिस कारण उन्हें भुखमरी का शिकार होना पड़ता है। वह सुविधा सम्पन्न नहीं हो सकते। ज़मीन विभाजित हो जाती है। पालतू पशुओं का भी अभाव हो जाता है और गुजर–बसर करना बहुत ही कठिन हो जाता है।

जन्म संस्कार– जब हम जन्म संस्कार की ओर दृष्टि डालते हैं तो इसका भी विशेष महत्व है। जन्म संस्कार को स्थानीय बोली में 'सस्टोन' कहा जाता है। यह कार्यक्रम मां के प्रसूतिकाल के एक सप्ताह के पश्चात होता है। सभी सगे संबंधी और पड़ोसी इकट्ठा होकर इस कार्यक्रम में बढ़चढ़ कर भाग लेते हैं और खुशियां मनाते हैं। कार्यक्रम में भाग लेने वाले सभी लोग अपने सामर्थ्य के अनुसार बच्चे की मां को कपड़े, मक्खन और कुछ पैसे उपहार में देते है। कार्यक्रम में उपस्थित सभी लोगों के लिए छंग सेवन और भोज का उचित ढंग से प्रबंध किया जाता है। जिस प्रकार हिन्दू लोग गंगा जल का प्रयोग करना पवित्र मानते हैं ठीक उसी प्रकार भोट छंग का सेवन करना अनिवार्य मानते हैं।

नामकरण– इसके पश्चात नामकरण की भी प्रथा है इसे स्थानीय भाषा में 'मिंगटोन' कहा जाता है। नामकरण नामक कार्यक्रम का आयोजन बच्चे के जन्म के एक वर्ष के पश्चात होता है किसी भी बच्चे के माता–पिता शिशु का नाम स्वयं नहीं रखते। शिशु के अभिभावक उसे गुम्पा

में महान लामा यानि बौद्ध भिक्षु के पास ले जा कर पूरे धर्मिक विधि विधान के साथ उसका सार्थक नामकरण करवाते है।

माता–पिता जिस लामा के पास शिशु का नामकरण करवाने जाते हैं तो वह लामा जी के लिए अपने सामर्थ्य अनुसार कुछ पैसे, गेहूं और जौ उपहार के रूप में लेना नहीं भूलते हैं। जब इस संस्कार की प्रक्रिया पूरी हो जाती है तो सभी सगे संबंधी सम्मिलित होकर एक स्थान पर रात्रि भोज करते हैं। जिसमें मदिरा के साथ–साथ छंग का सेवन करना भी अनिवार्य समझा जाता है।

विवाह संस्कार– विवाह संस्कार भी बहुत ही महत्वपूर्ण संस्कार है। इसे स्थानीय भाषा में 'बगटोन' कहा जाता है। यह रिवाज बहुत ही हर्षोल्लास के साथ सम्पन होता है। इस विवाह की प्रथा के अनुसार लड़के का पिता अपने पुत्र के लिए वधु की तलाश करता है वह प्रायः एक साथ तीन लड़कियां ढूंढता है और तीनों के नाम पर तीन फूल लाता है। और गुम्पा में जाकर देवता से उनमें से किसी उपायुक्त लड़की का नाम पूछता है। इस प्रक्रिया में मध्ययस्थ भी उसके साथ होता है।

उसे जिस लड़की की स्वीकृति मिलती है लड़के का बाप मध्यस्थ को लेकर लड़की के बाप के पास जाता है, वे अपने साथ छंग की कुछ बोतलें ले जाते हैं। रिश्ते की बात लड़के का बाप चलाता है बात पक्की हो जाने पर छंग की बोतलों को मक्खन का टीका लगाकर खोला जाता है।

तत्पश्चात विवाह की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। दूल्हा अपने सगे संबंधियों के साथ छंग लेकर दुल्हन के घर जाता है। सभी रिश्तेदार यह निर्णय करते हैं कि दूल्हा अपने होने वाली सास को अपने सामर्थ्य के अनुसार उपहार में क्या भेंट करेगा। यदि दूल्हा किसी सम्पन्न परिवार से हो तो वह एक से दस रुएये तक भेंट करता है यदि गरीब हो तो छंग की प्याली देकर ही रिवाज को कायम रखा जाता है। फिर दस या बीस दिन बाद दूल्हा दुल्हन के रिश्तेदार दुल्हन के घर इकट्ठे होते हैं और पूरे विधि विधान के साथ लामा विवाह प्रक्रिया सम्पन्न करते हैं। विवाह प्रक्रिया के पश्चात सभी रिश्तेदार छंग पीकर जश्न मनाते हैं।

अंत्येष्टि संस्कार– भोट समाज में मृत्यु संबंधी प्रथाएं अद्‌भुत और आश्चर्यजनक हैं। अंत्येष्टि संस्कार का भी भोट लोगों का अपना एक विशेष ढंग है। इसे भोटी भाषा में 'शिडटोन' के नाम से अभिहित किया जाता है। जब किसी व्यक्ति की भोट समाज में मृत्यु हो जाती है तो उसके शव की अस्थियों को तोड़–तोड़कर गोल बनाकर एक बड़े से थैले में डाल दिया जाता है। विशेषकर उसकी रीड़ की हड्‌डी को कुल्हाड़ी से तोड़ा जाता है। लेह में मुत्यु संस्कार घर परिवार की आर्थिक स्थिति और आमदनी पर निर्भर करता है। यदि किसी परिवार की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती है तो वह परिवार लामाओं को पर्याप्त संख्या में बुलाकर मृतक की आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना सभाएं आयोजित करवाता है। यह सभाएं पंद्रह से बीस दिन तक निरंतर चलती हैं।

यह शोकाकुल परिवार अपने सामर्थ्य के अनुसार प्रति दिन लामाओं को कुछ पैसे दान के रूप में देने का भी रिवाज है। सभी लामाओं के लिए खाने–पीने और चाय आदि का भी प्रबंध किया जाता है और बहुत अच्छा प्रबंध करना पड़ता है। दस से बीस दिनों तक शव को घर के भीतर ही रखा जाता है। शव को छोतकां (घर के भीतर छोटा मंदिर) के समीप रख कर पूजा की जाती है। अधिक दिन तक शव को घर में रखने का कारण यह है कि वह सूख जाता है। कहीं–कहीं मृतक के घर में शोक गीत भी गाए जाते है।

गरीब परिवार में शव को पांच या सात दिनों तक ही लामाओं द्वारा मृतक की आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना का आयोजन किया जाता है। जिस घर में मातमदारी होती है उसके प्रवेशद्वार पर एक कपड़े का टुकड़ा लटकाया जाता है जो मातमदारी का प्रतीक माना जाता है। पूरे विधि विधान के पश्चात मृतक के शव को जलाने के लिए डुंग–डुंग (ढोल) और शहनाई बजाते हुए 'पुरखंग' (शमशान घाट) की ओर प्रस्थान करके पंच तत्व में विलीन कर दिया जाता है।

ooo

क्षीर भवानी – ऐतिहासिक तीर्थ

–वीणा धर

यद्यपि कश्मीर की प्राकृतिक और अलौकिक रम–स्थली विशेषकर शिव–शक्ति का विहार–स्थल रहा है तथापि यहां सभी देवी–देवताओं के मंदिर, गुफाएं, कुंड और नदी–नद हैं और ये सब यथा समय नित्य और नैमित्तिक रूप से माने और पूजे जाते हैं। यहां के चप्पे–चप्पे में देवताओं का वास है। और कदम–कदम पर प्रकृति के निखार के दृश्य देखने को मिलते हैं। हिन्दू धर्म के जितने तीर्थ हैं, जितने देवी–देवता हैं और जितने यात्रा–स्थल हैं वे सब के सब कश्मीर में यदा–कदा प्रकारेण अविकल्प रूप से उपस्थित हैं। कश्मीर का प्राचीनतम ग्रन्थ 'नीलमत–पुराण' इस बात का साक्षी है और जनमत से भी यह बात सिद्ध होती है।

कश्मीर को 'शारदा–पीठ'' नाम से भी जाना जाता है। उत्तर–पश्चिम का यह पवित्र स्थान पाकिस्तान शासित कश्मीर के कब्जे में है। कहा जाता है कि जब आद्यशंकराचार्य कश्मीर आए थे तो यहां विद्या का बड़ा केंद्र शारदा–मठ से ही 'जगदगुरु' को सर्वोत्तम उपाधि से सम्मानित किया गया था। कश्मीर का विस्तार कृष्ण गंगा के समीप शारदा के पवित्र स्थान से लेकर बनिहाल–किश्तवाड़ तक के केसर–उपजाऊ तटवर्ती देशों तक माना गया है।

कश्मीर एक प्रसिद्ध शक्तिपीठ है। यह इक्यावन शक्ति पीठों में एक गिना जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि यहां देवियों के अनेक प्राचीन और अर्वाचीन मंदिर विद्यमान हैं। अर्वाचीन मंदिरों तथा सामूहिक पूजा स्थानों में भी कई देवस्थान बहुत अच्छे और प्रसिद्ध हैं। जम्मू–कश्मीर, श्रीनगर से कोई चौबीस किलोमीटर उत्तर–पश्चिम में गांदरबल रम्यस्थली

पर्यटकों का एक विशेष केंद्र है। यहां से चार किलोमीटर दूर तूलमूला एक गांव है। आस–पास के इलाकों सहित यह गांव प्राकृति का एक कोष है। अपनी ऊंचाई पर गर्व करते पहाड़, कल–कल करते झरने, सनसनाते वृक्ष, मंद और द्रुत गति से बहते नदी–नाले, धान के लहलहाते खेत, अमृत–रसपान कराने वाले मेवों के बगीचे और रंग–बिरंगे फूलों की छोटी–बड़ी क्यारियां यहां की विशेषता है।

पक्षियों की मनमोहक चहचहाहट स्वर्ग–सुख का आभास कराती है। यहां कश्मीर का प्रसिद्ध क्षीर–भवानी अर्थात् योगमाया का मंदिर है। चारों ओर जल है, बीच में एक टापू सा है।

इसी के बीच एक सुंदर कुण्ड – चश्मा है। जिसके बीच संगमरमर का मंदिर है। यहीं पर भगवती महाराज्ञी अपने भैरव वामदेव के साथ आसीन है। ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की अष्टमी को यहां बड़ा मेला लगता है और इस अवसर पर हर साल यज्ञ–पूजन होता है। दूर–दूर के इलाकों से और स्थानीय भक्तजन आकर बड़ी श्रद्धा और प्रेम से दिन–रात भजन–पूजा करते हैं। संध्याकालीन आरती के अद्भुत समय में बंधकर हरेक भक्तजन गद्–गद् होता है।

महाराज्ञी के मण्डप के चारों ओर जो पवित्र कुण्ड है वह छह कोणों वाला है। उसका आकार शारदा लिपि के ओंकार (ऍं) का है और विशेषता यह है कि उसका रंग बदलता है– गुलाबी, नीला, बादामी, लाल और काला आदि। जन–धारणा है कि इन्हीं रंगों के आधार पर देश के शुभाशुभ का विचार किया जाता है। यह टापू विशाल चिनार के वृक्षों से भरा है। शीतल छाया, स्वच्छ वायु, पास की पर्वत श्रंखला और सिन्धु नदी की शाखा उपशाखा में बहते नदी–नाले इस स्थल को इतना मनोहर बना देते हैं कि श्रद्धालुओं का मन यहां इतना रम जाता है कि वापस जाने की उनकी इच्छा नहीं होती।

महाराज्ञी को क्षीर भवानी नाम से भी अभिहित किया जाता है क्योंकि यह देवी सात्विक गुण विशिष्ट है। भगवती माता दुर्गा को इस रूप

में सात्विक भोजन और सुंदर वसन ही प्रिय हैं। क्षीर–हलवा इन्हें अति प्रिय है।

हिमालय की पश्चिमीं श्रंखला में ही कश्मीर की वादी स्थित है। पर्वतों की चोटियों से बर्फ पिघल कर नदियों में निर्मल जल बनकर बहती है। कहीं पर पृथ्वी में जज़्ब होकर कुण्ड का जल प्रवाह स्थान–स्थान पर प्रकट होता है। इन चश्मों को नाग कहते हैं। नीलतम पुराण और कल्हणकृत राजतरंगिणी से हमें पता चलता है कि कश्मीर में प्राचीनकाल में 'नाग' लोग बसते थे। यहां के शासक नीलनाग के नाम पर ही नीलमत पुराण बना था। यह नाग विशेष देवी–देवताओं को समर्पित हैं। चेत्र माह की प्रतिपदा (शुक्ल पक्ष) को जो पंचांग पूरे एक साल का प्रतिपादित होता है, उसकी गणना विचार नाग कुण्ड पर होती थी। तभी इसे विचारनाग की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

महामाया महाराज्ञी क्षीर भवानी कश्मीर के हिन्दू कुटुम्बों की प्रधान कुलदेवियों में से एक एवं इष्ट देवी महाराज्ञी त्रिपुरा अर्थात् तीन पुरों की सम्राज्ञी है और महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वती का समन्वित प्रतीक है। कश्मीरी पण्डित तुलमूल गांव में प्रति शुक्ल पक्ष की अष्टमी को और नित्य इनके दरबार में यथा समय जाकर इन्हें विनय, भक्ति और वात्सल्य के पुष्प भेंट करके संतुष्ट होते हैं।

तुलमूल गांव और आसपास की भूमि अधिकतर दलदली है। यहां कई चश्मे हैं और अमरनाथ तथा गंगबल की बर्फ की सरकती चट्टानों से बहती हुई सिन्धु नदी की उपशाखाओं से बने बहुत से टापू हैं। वनस्पतियों की बहुतायात है, धान के खेतों की भरमार है। खेतों की मुण्डेरों पर एक प्रकार की छोटी–छोटी वनस्पति उगती है जिसें 'व्यन्' कहते हैं और इसके पत्ते पुदीना के पत्तों जैसे होते हैं। इसकी सुगंध बहुत मनमोहक और शांतिप्रद होती है।

फूलों के साथ व्यन् का भी पूजा में प्रयोग होता है। गुलाब, गेंदे और कमल के फूल देवी मां को बहुत प्रिय हैं। गांव के पूर्व में चश्मों से एक स्वच्छ जल की नहर बहती है जो पुल के नीचे से होकर सिन्धु नदी

की शाख से मिलती है। इसे गंगखई कहते हैं। सफेदा और सरवत के वृक्षों से तुलमूल गांव आच्छादित है। इसके अतिरिक्त चिनार, तूत और जंगली वृक्ष उगे हैं। यहां पक्षियों की बोलियां सुंदर राग अलापती हैं। तुलमूल की सीमीपवर्ती आंचार झील 12 वर्ग किलोमीटर के विस्तार में फैली हुई है।

भौगोलिक विशेषज्ञों की मान्यता है कि यह झील पूर्व काल में लार और गान्दरबल की सीमावर्ती पर्वत–श्रंखला के दामन तक फैली हुई होगी। बाढ़ों के कारण उभरी हुई ज़मीन से सिन्धु नदी के जल और वर्षा के बहाव के द्वारा सैंकड़ों वर्षों से मिट्टी जमती गई और कालान्तर में झील की परिधी कम होती गई। आंचार झील के दक्षिणी भाग में खुशाल सर नाम की एक और झील है जिसमें जुलाई–अगस्त के महीनों में कमल के फूलों का सुंदर दृश्य देखने को मिलता है। कमल नाल की उपज से नदरू (कमल ककड़ी) तथा चम्बछ (कमलगट्टा) मेवे प्राप्त होते हैं।

यहां तीतर पक्षी के जैसी दुमवाला और उज्जवल पैरों वाला जाकना (Jacana) पक्षी तथा काले रंग की चिड़िया बहुत ही लुभावने उड़ते–चहचहाते नज़र आते हैं। इस झील के पूर्वी भाग में दो प्रभावशाली नाग हैं– अमरेश्वर जो अम्बुरहरे के स्थान पर है और दूसरा चश्मा बियहोम गांव में है।

क्षीरभवानी तीर्थ की यात्रा आजकल लोग यातायात के विभिन्न साधनों द्वारा करते हैं। परन्तु पुराने जमाने में लोग नाव, डूंगे, शिकारे द्वारा ही करते थे। कई भक्तजन पैदल जाने में ही तीर्थ यात्रा की सार्थकता समझते हैं। कई समृद्ध परिवार जेह्लम नदी से डूंगा या हाउस बोट में बैठकर श्रीनगर से प्रस्थान करते थे। खाने–पीने का प्रबंन्ध सारा डूंगा में ही होता था।

रास्ते में शादीपुर का तीर्थ स्थान है जहां वितस्ता और सिन्धु का संगम है। इस तीर्थ स्थान को 'प्रयाग' कहते हैं। यहां पर हर तेरह साल के बाद कुम्भ का मेला लगता है और पितरों का श्राद्ध तर्पण आदि किया जाता है। यहां पर मृतकों की अस्थियों का हिन्दू लोग विसर्जन भी करते हैं। सन् 1947 तक हरमुख पर्वत के समीप हर मुकुट गंगा हिन्दुओं की आस्था का

पवित्र स्थान होता था। किन्तु 1947 में जब कबाइली आक्रमण हुआ, तब से लोग वहां कम ही जाते हैं।

लगभग 23 किलोमीटर की सड़क यात्रा में तकरीबन बारह घण्टे लगते हैं। इस 10.12 घण्टों में पूरी जिंदगी का लुत्फ उठाया जाता है। रास्ते में ऊंची–ऊंची पर्वत श्रंखला, बहते झरने, सुंदर चश्में, लहलहाते धान के खेत, मक्की के खेत और आंचार झील का विस्तार आदि देखने को मिलता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से रामायण में महाराज्ञी का वर्णन बड़ी सुंदरता से किया गया है। राजा रावण पण्डित ब्राह्मण था। ऐसी मान्यता है कि रावण के पिता ऋषि पुलस्त कश्मीर के निवासी थे। यश प्राप्ति और सांसारिक सुख की समृद्धि के लिए रावण ने पार्वती की पूजा की। पार्वती रावण की भक्ती से इतना प्रसन्न हुई कि वह अपनी नौ आकृतियों में प्रकट हुई। जब अयोध्या के राजा श्रीराम ने लंका पर आक्रमण किया तो वानर सेनानी सुग्रीव और हनुमान ने रावण के भाई कुम्भकरण और बेटे मेघनाद का वध किया। परिणम स्वरूप मन्दोदरी ने पति लंकेश रावण से प्रार्थना की कि वह श्रीराम से संधि कर ले।

रावण को पत्नी का यह प्रस्ताव गवारा न हुआ और उसने भगवती श्यामा को प्रसन्न करने के लिए कठोर तपस्या की और नाना प्रकार की बलि चढ़ाकर संतुष्ट करने का प्रयास किया। सर्व शक्तिमान भगवती ने एक न मानी और उसने काली का रूप धारण करके रावण के इस कुकृत्य से क्रोधित होकर उसे शापित किया। महामाया ने हनुमान को आदेश दिया कि वह 360 नागों सहित अपने वाहन पर भगवती को सतीसर ले चले। भक्त हनुमान ने आज्ञा का पालन किया और कश्मीर वादी की उत्तर दिशा में एक दलदला स्थान चुना और शहतूत के वृक्ष के नीचे अपने उप देवी–देवताओ सहित राज्याभिषेक करने का कार्य सम्पन्न किया।

भगवती ने यहां सतोगुण रूप धारण किया और दूध, खीर, हलवा, मिष्ठान, चावल आदि वैष्णव पदार्थों की भेंट स्वीकार की। यहीं से महाराज्ञी का नाम क्षीर भवानी पड़ा। तुलमूला के विशाल कुण्ड में मां दुर्गा आज भी

श्रीनगर के हिन्दूओं सहित ब्राह्मण वर्ग के द्वारा बड़ी श्रद्धापूर्वक पूजी जाती हैं। भक्तजनों की धारणा है कि समय–समय पर रहस्यमयी घटनाओं और प्राकृतिक आपदाओं को प्रकट करने के लिए भगवती महाराज्ञा कुण्ड के जल में रंग बदलती हैं। तुलमुल से चार किलोमीटर दूर दुदरहोम का गांव है जहां से सिन्धु का एक नाला भी बहता है। यहां से पहले नौकाएं चलती थीं। इस स्थान का उल्लेख राजतरंगिणी के दुग्धाश्रम में किया गया है।

क्षीर भवानी महाराज्ञा मुख्य कुण्ड सात तरफों वाली शक्ल का है। पूर्व की तरफ इसके नोक को पाद यानी चरण नाम से अभिहित किया जाता है। इसकी उत्तर और दक्षिण की तरफ पश्चिम की अपेक्षा लम्बी है। इस भाग को शिरोभाग कहते हैं। इस स्थान पर एक शहतूत का वृक्ष भी था। अब इस स्थान पर संगमरमर का एक छोटा सा मंदिर है जहां महाराज्ञी अपने भैरव वामदेव सहित विराजमान है। इसे कश्मीर नरेश महाराजा प्रताप सिंह ने बनवाया था। बाद में महाराजा हरिसिंह ने धर्मार्थ ट्रस्ट के द्वारा संगमरमर के मंदिर की सुरक्षा के लिए इसके इर्दगिर्द चार स्तंभ खड़े करके ऊपर एक और मंदिर बनवाया। जनवाणी इस बात की पुष्टि करती है कि आदि शंकराचार्य, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानंद आदि संत महात्मा पवित्र कुण्ड के दर्शन करके मंत्रमुग्ध हो गए थे। स्वामी विवेकानंद ने यहां आकर समाधि–सुख का अनुभव किया था। स्वामी विवेकानंद जी 1898 ई. में क्षीर भवानी आये थे और उन्होंने कहा था कि हमें 93 वर्षों के पश्चात कश्मीर को पुर्नजीवित करने के लिए भगवती की शक्ति का आहवान करना चाहिए।

क्षीर भवानी का तीर्थ स्थान धर्मार्थ ट्रस्ट की देख–रेख में है जिसका नेतृत्व डा. कर्ण सिंह जी कर रहे हैं। इस तीर्थ स्थान को आकर्षक और सुविधाजनक बनाने के लिए धर्मार्थ ट्रस्ट ने 18 कनाल भूमि प्राप्त करके मंदिर का बाहरी द्वार विशाल तथा सुंदरतम बनाया है।

सन् 1990 में आतंकवाद ने कश्मीर की हिन्दू आस्था पर प्रहार किया। परिणामस्वरूप कश्मीर से हिन्दूओं का पलायन हुआ और कश्मीरी हिन्दुओं को बेघर होकर भारत के अन्य राज्यों में विशेषकर जम्मू में

शरणार्थी बनकर अपना भरण–पोशण करना पड़ा। जब से धारा 370 से जम्मू व कश्मीर विमुक्त हुआ है और संध राज्य क्षेत्र घोषित हुआ है, तब से कश्मीरी पण्डित बिरादरी आशावान है कि बहुत शीघ्र ही वे आदर और अधिकार सहित कश्मीर घाटी लौट जाएंगे और क्षीर भवानी का मेला हर शुक्ल पक्ष की अष्टमी को हर्षोल्लास के साथ सम्पन्न होगा।

शब्द ब्रह्मर्माय स्वच्छे देवि त्रिपुरसुन्दरि।
यथाशक्ति जपं पूजां गुहाण परमेश्वरि।।

अर्थात् तीन मलों से रहित, निर्मल चितस्वरूपा! तीनों अवस्थाओं में व्यापक सुन्दरी! परमेश्वर की स्वतंत्र शक्ति! मेरी शक्ति अनुरूप मेरे जप और पूजा को स्वीकार करो।

ooo

लोक संस्कृति और साहित्य

– रामदरश मिश्र

संस्कृति शब्द अपने आप में इतना लचीला है कि इसकी अनेक व्याख्याएं की गयी हैं। उन व्याख्याओं के जाल में उलझ कर यह कहा जा सकता है कि मानव की रक्षा और उत्कर्ष के लिए जो वैचारिक और भावात्मक प्रयत्न होते रहे हैं, उनका सामूहिक रूप संस्कृति है। इसके अन्तर्गत धर्म, दर्शन, साहित्य, कलाएँ सभी समाहित हो जाती हैं। इन भावात्मक और वैचारिक प्रयत्नों का प्रतिफलन बाहरी जगत में होता रहता है जिनके फलस्वरूप विशेष प्रकार के रीति–रिवाज, वेशभूषा, आदि बनते हैं और पर्वों, त्यौहारों, उत्सवों, आदि की योजना होती रहती है। इस प्रकार संस्कृति के भीतरी और बाहरी दो पक्ष हो जाते हैं। भीतरी पक्ष में भावात्मक और वैचारिक प्रयत्नों को लिया जा सकता है तथा बाहरी पक्ष में रीति–रिवाज, वेश–भूषा, पर्व, त्यौहार, आदि आते हैं। प्रायः देखा गया है कि भावात्मक और वैचारिक जगत में हलचलें मचती रहती हैं।

युगीन संदर्भों के दबाव हमारे मानवीय अनुभवों, दृष्टियों और मूल्यों में तनाव पैदा कर उन्हें परिवर्तित करते रहते हैं किन्तु वेश–भूषा, रीति–रिवाज, आदि क्रमागत ढंग से चलते रहते हैं। परिवर्तन इनमें भी होते हैं किन्तु ये जातीय संस्कृति के प्रतीक के रूप में किसी न किसी रूप में वर्तमान रहते हैं। इनमें तेज बदलाव नहीं दिखाई पड़ते फैशन के स्तर पर आने वाले बदलावों की बात नहीं कही जा रही है। फैशन के स्तर पर बदलाव के बावजूद व्यक्ति विभिन्न सांस्कृतिक अवसरों पर परंपरावादी ढंग के वस्त्र आदि पहनते हैं। पर्वो और त्यौहारों की स्थिति तो और भी स्थायी है। अनेक देशों और जातियों के अपने–अपने पर्व और त्यौहार हैं। आधुनिकता

के विकास के बावजूद ये ज्यों के त्यों बरकरार हैं, हाँ इनके साथ व्यक्ति के लगाव में कुछ कमी अवश्य आयी है।

संस्कृति का एक पहलू लोक संस्कृति है। संस्कृति की परिधि में आधुनिक–बोध सम्पन्न शिक्षित समाज की संस्कृति भी आती है और क्रमागत मान्यताओं, विश्वासों और मूल्य चेतना से जुड़े हुए अनपढ़ या कम पढ़े–लिखे देहाती अंचल के लोगों की संस्कृति भी आती है। लोक से अभिप्राय मनुष्य समाज के उस वर्ग से है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना और पांडित्य के अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित है। इसी लोक की संस्कृति का नाम लोक–संस्कृति है। लोक–संस्कृति अपेक्षाकृत अधिक स्थिर, परंपरावादी और सामूहिक होती है। उसमें परिवर्तन की प्रक्रिया बहुत मंद गति से काम करती है।

लोक–संस्कृति का एक पक्ष (आंतरिक पक्ष) लोक–जीवन के रागात्मक अनुभवों और जिंदगी के बारे में लोक की सोच–समझ, मान्यताओं तथा मूल्य–चेतना से बना है, दूसरा पक्ष (बाह्य पक्ष) पर्व–त्यौहार, प्रकृति, रीति–रिवाज तथा वेशभूषा से बना है। ये दोनों पक्ष काफी दूर तक एक–दूसरे से प्रभावित हैं। बाह्य पक्ष एक वस्तु के रूप में लोक–जीवन की भावना और वैचारिकता को अपने ऊपर टिकाता है और दूसरी ओर आंतरिक पक्ष अपने को मूर्त करने के लिए बाह्य पक्ष का विधान करता है। लोक–संस्कृति की अभिव्यक्ति के कई माध्यम हैं जिनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माध्यम लोक–साहित्य है।

लोक–साहित्य में एक ओर लोक–जीवन का दुख–दर्द, हर्ष उल्लास का अनुभव तथा जीवन पर वैचारिक प्रतिक्रियाएँ मिलती हैं, दूसरी ओर पर्व, त्यौहारों और प्रकृति के विविध चित्र मिलते हैं। लोक–जीवन के दुःख–दर्द, हर्ष उल्लास और वैचारिक प्रतिक्रियाओं का स्वर प्रायः पारंपरिक अधिक होता है जो समकालीन अर्थव्यवस्था के ठोस दबाव का परिणाम न होकर नियति के क्रूर विधान का परिणाम होता है जिनकी वैचारिकता सामाजिक विषमताओं की बेचैनियों से पैदा न होकर बने बनाये रूप में चलती आती

हैं। किंतु आधुनिक काल में आकर लोक–साहित्य अपने समय की बेचैनियों से जुड़ जाता है। देश की गुलामी और समाज की जड़ता के विरुद्ध जो अनेक वैचारिक और भावात्मक आंदोलन उठे उनमें केवल पढ़े–लिखे लोग ही शामिल नहीं थे, अनपढ़ और मजदूर भी शामिल थे। शहर ही शामिल नहीं था, गाँव भी शामिल था। अर्थात् वह अनपढ़ किसान समुदाय भी शामिल था जिससे लोक बनता है। मैदान, जंगल, पहाड़ सभी इलाकों में एक नयी चेतना उत्पन्न हो रही थी। यह चेतना राष्ट्रीय थी जिसमें सामाजिक जागरण का स्वर भी था और आर्थिक विषमता की पहचान की आहट भी थी। इस प्रकार लोक–चेतना पारंपरिक सुख–दुःख, राग–विराग और मूल्य–दृष्टि को वहन करने के स्थान पर नये ठोस राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक संदर्भों में प्राप्त सुख–दुःख, राग–विराग और मूल्य–दृष्टि से स्पंदित होने लगी थी। ईश्वरीय न्याय–व्यवस्था के नाम पर होने वाले सामाजिक शोषण के प्रति उसमें समझ उभरने लगी थी। इस प्रकार इस काल की लोक–संस्कृति अपनी वैचारिक और भावात्मक भूमि पर अधिक युगीन होने लगी थी। लेकिन लोक–संस्कृति युगीन संस्पर्श पाकर भी अपनी परंपरा की जड़ों से नहीं कटती। सदियों से बहता चला आता मानवीय दुःख–दर्द उसमें बहता रहता है।

हम लोक–साहित्य के माध्यम से लोक–संस्कृति की इस परंपराशीलता और युगीन चेतना की सहयात्रा की पहचान कर सकते हैं। लोक–साहित्य की एक सशक्त विधा है लोक–गीत। यदि भोजपुरी लोकगीतों को आधार बनाकर बात की जाये तो ज्ञात होगा कि इनमें विभिन्न सांस्कृतिक अवसरों, पर्वों और ऋतुओं के अनुसार विभिन्न प्रकार के लोकगीत हैं। सांस्कृतिक अवसरों में जन्म, यज्ञोपवीत, विवाह, आदि आते हैं। सोहर इस अवसर पर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लोकगीत है। पर्वों में होली, दिवाली, शिवरात्रि, नागपंचमी, कार्तिक स्नान तथा अन्य छोटे–छोटे त्यौहार आते हैं। इन सबके लिए अलग–अलग लोकगीत हैं। ऋतुओं से संबंधित लोकगीत हैं–होली, चैता, कजली, आदि। इसी प्रकार धोबी, कहार, हरिजन, आदि जातियों के अपने–अपने गीत हैं।

कुछ प्राचीन कथाओं पर बने हुए लोकगीत हैं। ये गीत पीढ़ी–दर–पीढ़ी ज्यों के त्यों चले आते हैं। ये गीत हमें प्रभावित करते हैं क्योंकि इनके आलंबन थोड़े–बहुत अनुपात में अभी हमारे समाज में हैं। ये गीत प्रायः मानवीय संयोग–वियोग से उत्पन्न उल्लास और वेदना तथा आलंबन और उद्दीपन के रूप में स्थित प्रकृति–सौन्दर्य के हैं। इनके अतिरिक्त मांगलिक अवसरों के उल्लास तथा प्रेमेतर मानवीय वेदना के भी स्वर इनमें हैं। प्रकृति तो अनादि काल से अपने आदिम रूप में स्थित है ही किन्तु हमारे मानवीय सुख–दुःख को जगाने वाली ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था भी बहुत कुछ सदियों से अपने पारंपरिक रूप में स्थित रहती आयी है। पुत्र जन्म को शुभ माना जाना, लड़की के जन्म को विषादकारी माना जाना, लड़की की शादी का आर्थिक और मानवीय दर्द, उसके अनिश्चित भविष्य की पीड़ा, कमाने के लिए पुरुष का परदेश जाना, वर्षों तक न लौटना, पत्नी का वियोग जन्य पीड़ा से गुरजना, घर की आर्थिक मजबूरी, विषम विवाह, असफल प्रेम, आदि न जाने कितने संदर्भ हैं जो सदियों से हैं और आज भी मिटे नहीं हैं। लोकगीतों में इनकी बड़ी मार्मिक अभिव्यक्तियाँ हुई हैं। इसलिए पारंपरिक प्रकार के लोकगीत आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं किन्तु अब धीरे–धीरे शहरोन्मुख लोक चेतना के लिए इनका आकर्षण कम हो रहा है। अब इनकी जगह फिल्मी गीत महत्त्व पाने लगे हैं। युगीन संदर्भ में यह लोक चेतना और संस्कृति के बदलाव का एक संकेत है। धीरे–धीरे लोक चेतना व्यावसायिक और नगरोन्मुख हो रही है इसलिए वह लोकगीतों को अनाधुनिक समझकर छोड़ने लगी है।

इन पारंपरिक लोकगीतों के साथ–साथ आधुनिक काल में नयी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक चेतना के अनेक गीत लिखे गये। पारंपरिक लोक छंदों में नयी वस्तु भर दी गयी। कजली, बिरहा, होली, गाली (शादी के अवसर पर गाया जाने वाला गीत), आदि अनेक लोक छंदों में अनेक समकालीन प्रसंगों और चेतनाओं को रूपायित किया गया। प्रेम के प्रसंगों को गाने वाले छंद सामाजिक और राष्ट्रीय ऊर्जा के गीत गाने लगे। शोषित जातियों ने अपने पारंपरिक गीतों में शोषण के विरुद्ध प्रत्यक्ष या प्रच्छन्न स्वर ऊँचे किये हैं।

आधुनिक काल में लोक–जीवन की पारंपरिक स्तब्धता टूटने लगी और स्वाधीनता के पश्चात् तो उसके टूटने का क्रम बहुत तेज हो गया। गाँवों में नयी राजनीतिक, आर्थिक परिस्थितियाँ और तज्जन्य प्रभाव उभरे। इसके फलस्वरूप सामाजिक जीवन बहुत तेजी से बदलने लगा। शिक्षा का प्रसार होने लगा। शहरों से संपर्क घना हो गया। फलस्वरूप गाँव की अति भावात्मक मानसिकता, व्यावसायिकता, उपयोगिता और बौद्धिक चतुराई से संपन्न होती गयी। संबंधों और मूल्यों में बहुत बदलाव आये। प्रकृति और पर्वों के प्रति रागात्मक लगाव कम होता गया। राजनीति के प्रभाव ने एक और लोक–जीवन को अपने अधिकारों के प्रति सचेत किया, दूसरी ओर उसमें भयानक टूटन, स्वार्थ मन्यस्तता, असुरक्षा, आदि भर दी। आज लोक–जीवन एक दूसरा ही लोक–जीवन है। चाहे भला हो, चाहे बुरा, यही यथार्थ है और इसकी संस्कृति अत्यंत संक्रांत और बहुआयामी बन गयी है। नये संदर्भों में एक ओर लोक चेतना अत्यंत जटिल बन गयी है, दूसरी ओर स्थायी रूप में वर्तमान प्रकृति के प्रति उसका लगाव कम हो रहा है। इस लगाव की कमी का परिणाम यह हो रहा है। कि जंगल, बाग, बगीचे कटते चले जा रहे हैं और खेत बनते जा रहे हैं।

प्राणवान शिष्ट साहित्य का लोक–संस्कृति से गहरा संबंध होता है। शिष्ट साहित्य की दो कोटियाँ देखी जाती हैं। एक कोटि व्यक्तिनिष्ठ साहित्य की है, दूसरी कोटि समाजनिष्ठ साहित्य की है। व्यक्तिनिष्ठ साहित्य में रचनाकार अपने मन में या किसी अन्य व्यक्ति के मन में उठे हुए भावात्मक उद्‌गारों को वाणी देता है। यदि वह रचनाकार किसी अभिजात कुल में पैदा हुआ है और आगे भी अभिजात या कुलीन लोगों के परिवेश में ही घिरा रहता है तो जाहिर है कि उसकी भावनाओं, उसके संस्कारों, उसके अनुभवों का जनसामान्य से कहीं जुड़ाव लक्षित नहीं होगा।

उसके अनुभवों या भावनाओं का संबंध या तो स्वयं उससे होगा या उस विशेष कुलीन वर्ग से होगा जिसके बीच उसकी जीवन–यात्रा चलती है। रीतिकाल में हम यह देखते हैं। यद्यपि कवि सामान्य वर्ग में पैदा हुए थे किन्तु जीविका और यश के लिए वे राजाओं और सामन्तों के दरबारों के

परिवेश में बँध गये थे। इसलिए उनकी कविताओं का संबंध शृंगारिक भावना से जुड़ गया था और यह शृंगारिक भावना भी प्रायः स्थूल और उत्तेजक थी। इसका संबंध या तो कवियों की निजी रुचि से जुड़ गया था या दरबारी परिवेश से लोक संस्कृति से इसका कोई सरोकार नहीं था। यों ऊपर–ऊपर से लोक–संस्कृति के कुछ स्थूल उपकरणों का शृंगारिक संदर्भ में स्थूल उपयोग अवश्य आमासित होता है किंतु लोक संस्कृति की मूल चेतना यहाँ सर्वथा अनुपस्थित है।

आधुनिक काल में मन की ग्रंथियों को खोलने के क्रम में और एक विशेष प्रकार की आधुनिकता की समझ को रूपायित करने की प्रक्रिया में अनेक लेखकों ने अपने ही व्यक्ति या अन्य व्यक्ति के बहुत सीमित सत्य को उद्‌घाटित किया है और चाहे इन रचनाओं के केन्द्र में वह स्वयं रहा हो या कोई अन्य व्यक्ति, वह प्रायः पढ़ा–लिखा शहरी मध्यवर्गीय व्यक्ति ही है जिसका लोक–जीवन से कोई संबंध नहीं दिखाई पड़ता। इसलिये ये रचनाएँ चाहे कितनी ही गहराई का आभास क्यों न देती हों, उनमें जीवन की शक्ति का अभाव दिखाई पड़ता है। इनकी गहराई वास्तविक नहीं, काल्पनिक है और इस प्रकार का साहित्य एक विशेष प्रकार की मानसिकता को कुछ समय के लिए तुष्टि भले ही प्रदान करता हो, उसमें न तो बदलते हुए इतिहास के यथार्थ का ताप होता है और न इतिहास को कोई नयी दिशा देने की शक्ति इसमें जो विद्रोह दिखाई पड़ता है वह एक निषेध मात्र होता है, वह भी प्रायः यौन संदर्भों में। उसमें जीवन की सृजनात्मक शक्ति का अभाव होता है।

इसके विपरीत लोक–संस्कृति से जुड़ा हुआ साहित्य अधिक प्राणवान और स्थायी तथा गहरे प्रभाव वाला होता है। ऊपर लोक–संस्कृति के विवेचन में उसके आंतरिक और बाह्या पक्षों को तथा उनके संबंधों को विश्लेषित करने की प्रक्रिया में कहा गया है कि लोक–संस्कृति में एक ओर लोक–जीवन की भावात्मक और वैचारिक दुनिया होती है, दूसरी ओर रीति–रिवाज, वेशभूषा, पर्व–त्यौहार और प्राकृतिक परिवेश होते हैं। शिष्ट साहित्य जब एक व्यापक यथार्थ से जुड़ने का प्रयत्न करता है तो वह

शिष्ट कहे जाने वाले सीमित समाजों का अतिक्रमण कर एक बड़े समाज के पास जाता है जहाँ शिष्टेतर लोगों की एक बड़ी दुनिया होती है और वह साहित्य उस दुनिया के अनेक प्रकार के अनुभवों, मान्यताओं, विश्वासों, संबंधों, मूल्यों, आदि को तो ग्रहण करता ही है, साथ ही वे जिस परिवेश में मूर्त होते हैं और जिस रूप में मूर्त होते हैं, उन्हें भी अपने भीतर समेटता है।

वास्तव में शिष्ट समाज चाहे कितना भी चमकीला और तर्क सम्पन्न हो, उसमें एक जड़ता होती है और लोक–जीवन चाहे कितना भी खुरदरा और विश्वासमय हो, उसमें एक लोच और गति होती है, उसमें एक बहाव दिखायी पड़ता है। इसलिए जब जब शिष्ट समाज से जुड़ा हुआ शिष्ट साहित्य जड़ होने लगता है, उसे प्राण और गति प्राप्त करने के लिए लोक–संस्कृति के पास जाना पड़ता है और यह आकस्मिक नहीं है कि साहित्य के पूरे इतिहास में वह दौर अधिक प्राणवान रहा है, जिसका संबंध लोक–संस्कृति के समग्र रूप से रहा है।

इस दृष्टि से भक्तिकालीन साहित्य की शक्ति देखी जा सकती है। भक्तिकालीन साहित्य भारतीय साहित्य के इतिहास में पहली बार एक आंदोलन के रूप में लोक–जीवन से जुड़ा। भक्ति के क्षेत्र में जात–पाँत, ऊँच–नीच का भेदभाव समाप्त हो गया। 'मनियत सबहिं राम के नाते सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं' की भावना ने जोर पकड़ा। यह आंदोलन एक ओर ईश्वर की व्यक्तिगत आराधना से जुड़ा था, दूसरी ओर लोकमंगल से तुलसी ने रामचरितमानस में भक्ति का जोरदार प्रतिपादन तो किया ही, साथ ही आराध्य राम को लोक–जीवन के बीच उपस्थित कर लोक–जीवन की विविध आंतरिक और बाह्य छवियों का उद्घाटन किया। उन्होंने महाकाव्य परंपरा को लोक–जीवन से जोड़कर उसे एक नया आयाम दिया और 'मानस' को देखकर सचमुच यह कहा जा सकता है कि महाकाव्य जातीय जीवन की समग्रता की गाथा होती है, वह केवल नायक के समग्र जीवन का ही चित्र नहीं होता। तुलसी ने प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों माध्यमों से रामकथा का प्रसार लोक–जीवन के बीच किया और उन्होंने लोक–हृदय,

लोक–व्यवहार, लोक–मूल्य, लोक–विश्वास, लोक–भाषा, लोक–रीति आदि सभी से रामकथा को संकलित किया। इसीलिए मानस की रामकथा को एक अलग ही शक्ति और छवि प्राप्त हुई और वह लोक में तथा शिष्ट पाठक समुदाय में इतना प्रिय हुई। एक सीमित संदर्भ में सूरदास ने भी कृषि प्रधान देश के नायक कृष्ण की लीलाओं को लोक–जीवन से जोड़ा। ग्वाल–समुदाय लोक का प्रतीक है और कृष्ण उसके अगुवा हैं। कृष्ण–लीला की गहरी प्रभावोत्पादकता का रहस्य उसकी लोक–संस्कृति से संपृक्ति ही है। लोक–संस्कृति की बहिरंतर छवियाँ कृष्ण–लीला को प्राणवान बनाती हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जायसी के पद्मावत के सौंदर्य का संबंध भी लोक–संस्कृति से जोड़ा है।

निर्गुण कवियों में लोक–संस्कृति की विद्रोही चेतना का आयाम दिखाई पड़ता है। शिष्ट और कुलीन समाज ने धर्म, संस्कृति, आदि के नाम पर छोटी जातियों के विरुद्ध शोषण का मोर्चा खड़ा कर रखा था। निर्गुण कवि प्रायः छोटी जातियों से आये थे। वे सही अर्थों में लोक प्रतिनिधि थे। वे इस शोषण के विरुद्ध विद्रोही चेतना का अनुभव कर रहे थे और उन्होंने धक्कामार शब्दों में उसे व्यक्त किया। कबीर में यह चेतना सबसे अधिक प्रखर थी। लोक–संस्कृति की विद्रोही चेतना (जो विश्वासों और मान्यताओं के ठहराव पर आघात कर संस्कृति को नये आयाम देती है और उसमें एक तेज बहाव लाती है) कबीर साहित्य में दिखाई पड़ती है। इसलिए हमारे साहित्य के इतिहास में कबीर साहित्य की शक्ति अनुपम मानी गयी है। भक्त कवियों ने, चाहे व्यक्तिगत साधना का क्षेत्र रहा हो, चाहे सामाजिक यथार्थ का, सर्वत्र लोकवियों, लोक–कथाओं का प्रयोग किया है। इससे कविता का कथ्य मूर्त होता है। यह मनुष्य के आदिम संस्कारों को सहज ही छूता है और उसके भावों को झनझना देता है।

भक्तिकाल के पश्चात् आधुनिक काल में लोक–संस्कृति से जुड़ने का प्रवाह उमड़ा। भारतेंदु और उनके साथियों को देश और समाज के उद्धार की जो गहरी चिंता व्यापी, उसके फलस्वरूप वे लोग लोक–जीवन से जुड़े। शासन–व्यवस्था और समाज–व्यवस्था की दुहरी विसंगतियों के पाट

में पिसते लोक–जीवन की और उनकी दृष्टि गई। महामारी, अकाल, टैक्स, चुंगी, पुलिस और अफसरशाही के जुल्म, अशिक्षा, बेमेल विवाह, आदि को साहित्य का विषय बनाना लेखकों की लोकोन्मुखी चेतना का परिचायक है। इसलिए एक ओर तो इन लेखकों ने लोक–जीवन की परंपरागत स्तब्धता की पहचान की, दूसरी ओर नयी स्थितियों में उसके मन के बदलाव को देख, साथ ही साथ उसमें नयी चेतना की हलचल पैदा करनी चाही, तीसरी ओर लोक–साहित्य के छंदों, भाषा और पद्धतियों का इस्तेमाल कर लोक चेतना के संप्रेषण को अधिक सुगम बनाना चाहा। इन्हीं विशेषताओं को देखकर आचार्य शुक्ल भारतेन्दु ने कहा कि साहित्य और जीवन के बीच जो खाई बनती जा रही थी, उस आधुनिक साहित्य का द्वार भारतेन्दु ही खोलते हैं। और वह द्वार उनके और उनके साथियों के इस प्रकार के लोकवादी साहित्य से ही खुलता है। यह बात कही जा सकती। है कि भारतेन्दु युग का यह नया साहित्य कलात्मक उपलब्धियों के शिखर नहीं छूता, किंतु यह बात भी उतने ही बलपूर्वक कही जा सकती है कि बाद की साहित्यिक उपलब्धियों का मूलाधार भारतेन्दु काल की यह लोकोन्मुखता ही है। उसे नींव कह सकते हैं। सशक्त साहित्य की परंपरा खुरदरे जीवन के साहित्य से ही शुरू होती है, चिकने–चुपड़े शिष्ट जीवन के साहित्य से नहीं।

द्विवेदी कालीन साहित्य की चेतना भी राष्ट्र और समाज से जुड़ी रही किंतु उसने लोक–जीवन के वर्तमान की अपेक्षा राष्ट्र के अतीत गौरव को अधिक रेखांकित किया। यह सच है कि उसने अतीत को वर्तमान के संदर्भ में काफी दूर तक पुनः निर्मित किया है, किंतु वे सीधे लोक–जीवन के वर्तमान विविध प्रसंगों से कम टकराये और लोक–साहित्य की शक्तियों का कम इस्तेमाल किया।

भारतेन्दु काल के बाद स्वातंत्र्य काल में लोक–संस्कृति से जुड़ने का अद्‌भुत समारोह दिखाई पड़ता है। छायावाद की कविता में निराला ही अपनी कुछ कविताओं में लोक–जीवन की चेतना से जुड़ते हुए दिखाई पड़ते हैं। हाँ, कथा साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद ने लोक चेतना को शिष्ट

साहित्य की शक्ति और उपलब्धि का एक प्रमुख आधार ही बना दिया। प्रेमचंद ने लोक–संस्कृति के नाम पर लोक में प्रचलित जीवन–पद्धतियों को ही नहीं लिया बल्कि उन्होंने लोक के ठेठ लोगों–अभिशप्त किसानों, मजदूरों तथा आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से शोषित अन्य लोगों को अपने कथा साहित्य का आधार बनाया। लोक–जीवन की सुख–दुःख की विविध संवेदनाओं का चित्रण कर उन्होंने उसकी वास्तविक स्थितियों का तो चित्रण किया ही, साथ ही उसमें आने वाले चेतनागत परिवर्तनों को भी रेखांकित किया। यातना, अभाव, परंपरागत मान्यताओं, ईश्वरीय न्याय के नाम पर चलने वाले शोषण के प्रति विश्वासों का चित्रण करने के साथ–साथ लोक–जीवन में उगती हुई नयी ऊर्जा, समझ और विद्रोह वृत्ति को भी उभारा। प्रेमचंद के साहित्य में जो शक्ति है, वह लोक–जीवन की इसी चेतना की पहचान की शक्ति है। लोकगीतों के नये प्रयोग की ओर संकेत करके प्रेमचंद ने लोक–साहित्य को पारंपरिक संवेदना के वाहक के साथ–साथ नयी चेतना का भी वाहक बनाया। 'गोदान' में होली के अवसर पर गोबर और उसके साथियों द्वारा खेला गया स्वांग लोकगीत के माध्यम से शोषण का पर्दाफाश करता है। प्रेमचंद ने पारंपरिक गीतों का भी प्रयोग किया है किंतु उनसे अपने उपन्यास की किसी संवेदना को गहराया है। जालपा के वियोग को उसका जाँते पर गाया हुआ गीत 'हमके जोगिन बना के कहाँ गइले रे जोगिया' तथा होरी की बेचैनी को उसके द्वारा गुनगुनाया जाने वाला चैता 'हिया जरत रहत दिन रैन' अधिक घनीभूत कर देता है।

प्रगतिवादी आंदोलन ने भी अपने को लोक–जीवन और लोक संस्कृति से जोड़ने का प्रयत्न किया किंतु उसके इस प्रयत्न में एक दर्शन के तहत मात्र एक ललक थी, गहरी अनुभूति नहीं थी। इसलिए वह लोक–जीवन और संस्कृति को स्थूल या एकांगी रूप में ही देख सका, उसके साथ गहरा तादात्म्य स्थापित नहीं कर सका, यही वजह है कि उसने एक अच्छे प्रयत्न की शुरुआत तो की किंतु उससे स्वयं कोई उपलब्धि नहीं प्राप्त कर सका।

लोक संपृक्ति स्वातंत्र्यकालीन साहित्य की एक विशेष प्रवृत्ति भी है और उपलब्धि भी। कवियों, कहानीकारों और उपन्यासकारों के एक बहुत

बड़े वर्ग ने अपने लेखक को लोक–जीवन, अतः उसकी संस्कृति से जोड़ा। यह बात ध्यान देने की है कि आजादी के बाद गाँव बहुत तेजी से बदले और शहरों का भी सामान्य वर्ग एक नयी राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समझ से अनुप्राणित होने लगा। अतः लोक से संपृक्ति का अर्थ है उसकी इस नयी चेतना और समझ से संपृक्ति तथा उसके साहित्य में जो नया बदलाव आया, उससे संपृक्ति।लोक–जीवन और संस्कृति से संपृक्ति यहाँ कई रूपों में देखी जा सकती है। पहली और सर्वाधिक महत्व की संपृक्ति है लोक की नयी समझ और चेतना से संपृक्ति। इसकी सर्वाधिक सशक्त अभिव्यक्ति आंचलिक उपन्यासों में दिखायी पड़ती है। आंचलिक उपन्यासों की शक्ति या उपलब्धि इस बात में नहीं है कि उसने लोक–जीवन को धारण करने वाले विविध अंचलों की आंचलिक रंगत को, उसके भावुक प्रेम–संबंधों को रूमानी दृष्टि से उभारा है, बल्कि इस बात में है कि उसने अंचलों के माध्यम से गाँव के बदले हुए संबंधों, अनुभवों, समझ और मूल्य दृष्टियों को पहचाना और एक जीवन–चेतना का समग्र स्वर उभारने के लिए उन्हें परस्पर संयोजित किया। इस बदलाव के काल में नये और पुराने की अद्‌भुत टकराहट दिखायी पड़ती है इसलिए लोक–जीवन सरल न रहकर बहुत जटिल बन गया है। इस जटिलता की पहचान ने ही आंचलिक उपन्यासों को गहरी शक्ति दी है। रेणु ने 'मैला आँचल' में गाँव के फूल–शूल, कीचड़–गुलाल सभी को एक–दूसरे की पारस्परिकता में देखा। यही क्रम आगे चलता रहा।

लोक–जीवन और उसकी संस्कृति की इस चेतनागत पहचान के साथ ही आंचलिक उपन्यासकारों ने अंचल के माध्यम से लोक के नये पुराने रीति–रिवाजों, वेश–भूषा, भाषा और साहित्य, पर्वों, त्यौहारों, मेलों–हटियों और प्राकृतिक छवियों का बहुत समारोहपूर्ण उद्‌घाटन किया। लोक–प्रकृति के रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द के न जाने कितने सूक्ष्म–स्थूल, कोमल–कठोर बिंब इन उपन्यासों में हैं और वे निरपेक्ष रूप से नहीं, मानव जीवन की सापेक्षता में नियोजित हुए हैं। इसी प्रकार अनेक लोकगीतों और लोक कथाओं का जीवन – सापेक्षता में उपयोग हुआ है। वे सभी अलग–अलग टुकड़े नहीं हैं वरन् अंचल के जीवन यथार्थ को

उद्घाटित करने के क्रम में विन्यस्त किये जाने वाले कथानक के अपरिहार्य अंग बनकर आये हैं। बल्कि यों कहा जाये कि मनुष्यों की तरह ये भी कथानक की सर्जना करते हैं।

इसलिए कल्पना से बुनी जाने वाली शहरी कथाओं की एकरसता से हुए पाठकों को इस उपन्यासों में जीते–जागते पात्र, जीते–जागते संदर्भ और वास्तविक वातावरण मिला। और लगा कि उपन्यास जानी–पहचानी जमीन से फूट रहे हैं। शिष्ट साहित्य लोक–जीवन और उसकी संस्कृति के अक्षय रस स्रोतों का उपयोग करके कैसे शक्ति प्राप्त करता है, इसका प्रमाण आंचलिक उपन्यास हैं। स्वातंत्र्य–कालीन कविता और कहानी के क्षेत्र में अनुभव की प्रामाणिकता की बात उठायी गयी। कवि अपने–अपने परिवेश से जुड़े या जिस परिवेश से जुड़े थे, उसके अनुभवों को कविता में जोड़ा। इससे कविता में एक ताजगी आयी किंतु इस जुड़ाव में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका लोक परिवेश से जुड़ाव की है। शहरी मध्य वर्गीय या अभिजात वर्गीय परिवेश से जुड़ाव का भी बहुत महत्व है किन्तु ठेठ अर्थ में लोक से जुड़ी हुई कविताओं ने न केवल एकरसता तोड़ी, बल्कि कविता को उस जीवन से अनुभव के द्वारा जुड़ने के लिए प्रेरित किया जो शक्ति और ताजगी का अक्षय भंडार है। बच्चन, दिनकर, नरेन्द्र शर्मा जैसे कवियों ने छायावादोत्तर कविता को लोकोन्मुख किया था किन्तु स्वाधीनता प्राप्ति के बाद यह लोकोन्मुखता अत्यंत सघन हो गयी। हाँ, यह अवश्य कहना पड़ेगा कि कविता की लोकोन्मुखता आंचलिक उपन्यासों की लोकोन्मुखता की तरह लोक–जीवन के अनेक आयामों से जुड़ी नहीं थी, उसमें तो प्रकृति और प्रेम के संदर्भ ही प्रमुख रहे। लोक–प्रकृति और प्रेम के संदर्भों ने ही कविता को न जाने कितनी ताजगी दी। गीतों में तो एक टटका स्वाद भी भर उठा। ठाकुरप्रसाद सिंह के 'वंशी और बादल' के गीत संथाली जीवन और गीतों पर आधारित होने के कारण ही इतनी शक्ति और ताजगी प्राप्त कर सके। आजादी मिलने के बाद ऐसे गीतों की एक लहर–सी आ गयी। 'फागुन की शाम' (धर्मवीर भारती), 'पीके फूटे आज प्यार के' (भवानीप्रसाद मिश्र), 'ओ पिया पानी बरसा' (अज्ञेय), 'माझी न बजाओ वंशी' (केदारनाथ अग्रवाल), 'गीतों से भरे दिन फागुन के ये' (केदारनाथ सिंह) जैसे अनेक

गीत इस संदर्भ में देखे जा सकते हैं। इन गीतों में प्रकृति और प्रेम के रूप, रस, गंध, स्पर्श और स्वर के जो अनेक अनछुए बिंब दिखाई पड़ते हैं, उनका आधार लोक है और गीतों की गति का आधार लोकगीत हैं।

गीतेतर नयी कविता में भी परिवेश अनुभवों, बिंबों, शब्दों, आदि के रूप में लोक–जीवन का गाढ़ा रंग लक्षित होता है और यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि नयी कविता की छवि, शक्ति और उपलब्धि के आधारों में से एक मुख्य आधार है लोक–जीवन और संस्कृति से उसकी गहरी संपृक्ति।

हिन्दी कविता में नयी कविता के बाद फिर एक दौर ऐसा आता है जिसमें कविता लोक–जीवन और उसकी संस्कृति से कट जाती है और इसलिए उसका यह हश्र होता है। कि वह काव्येतिहास का एक निष्प्राण अध्याय बनकर चुक जाती है। किंतु उसके बाद फिर कविता लोक से जुड़ती है किंतु यह लोक नयी कविता के प्रेम और प्रकृति वाला लोक नहीं है वरन् नयी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समझ और तेवर के साथ शोषण के विरुद्ध संघर्ष करता हुआ लोक है। इसलिए इस लोक से जुड़ने वाली कविता में विद्रोह की चेतना है। यह विद्रोह केवल किताबी नहीं है, बल्कि ऐतिहासिक परिवर्तन से गुजरने वाले लोक–जीवन की पहचान से आया है। इसलिए अधिक प्रामाणिक और गहरा है। लोक–जीवन में हर स्तर पर जो परिवर्तन हो रहे हैं, उनकी आहट आज के समूचे साहित्य में मिल रही हैं। यह आहट जितनी ही सच्ची और प्रामाणिक होगी, साहित्य उतना ही प्राणवान और टिकाऊ होगा।

०००

भारतीय जनमानस के नायक : राम

—केशव मोहन पाण्डेय

राम! भारतीय जनमानस के अंतःकरण में बसा नाम। राम का नाम जन—जन को क्षण—क्षण प्रेरित करता है। प्रेरित करता हैं अनाचार का विरोध करने के लिए। प्रेरित करता है बुराई का नाश करने के लिए। प्रेरित करता है राम के आदर्शों का अनुगामी बनने के लिए। राम अठाइसवें चतुर्युगी के त्रेतायुग में हुए राजा थे। राम का चरित्र इतना विशाल है कि आज कलियुग में भी वे घर—घर में, जन—जन के मन में विराजमान हैं। राम ने हिंसा, चोरी, व्यभिचार, मद्यपान, जुआ, असत्य—भाषण जैसे पापों के करने वाले दुष्टों का नाश करके एक समतामूलक समाज की स्थापना की। उनके समाज की कल्पना मात्र से ही भारतीय राजनीति समृद्ध होती है। भोली जनता असंख्य आशाएँ पालती है और उनका अनुकरण करते हुए अपने जीवन को धन्य करती है। उनकी गाथाओं का गान करती अपनी जीवन को सफल बनाने में लगी रहती है।

महर्षि वाल्मीकि के संस्कृत साहित्य से लेकर नरेश मेहता के 'संशय की एक रात' तक और वर्तमान के अन्य साहित्यकारों ने भी भिन्न—भिन्न उपमाओं, अलंकारों, उद्‌भावनाओं, कथोपकथनों, कथा—प्रसंगों आदि से राम के चरित्र को वर्णित किया है। राम कथा को लोक मानस तक संप्रेषित करने का प्रयास किया है। हरिवंश पुराण, स्कंद पुराण, पद्‌म पुराण, भागवत पुराण, अध्यात्म रामायण, आनंद रामायण, भृशुंडी रामायण, कंब रामायण आदि ग्रंथों द्वारा भी राम कथा का व्यापक प्रचार हुआ है। प्रतिमा नाटक, महावीर चरित, उदात्त राघव, कुन्दमाला, अनर्घराघव आदि नाटकों द्वारा भी राम कथा को लोकप्रिय बनाया गया है, परन्तु राम—कथा

को जो प्रसिद्धी गोस्वामी तुलसीदास द्वारा मिली, वह किसी अन्य ने नहीं दिया।

राम का चरित्र लोक मानस का आदर्श चरित्र है। वे हमारे दैनिक जीवन के प्रेरणा–स्रोत हैं। वे आदर्श व्यक्ति हैं। महानायक हैं। वे ईश्वर के अवतार हैं। दीनानाथ हैं। वे सबके हैं। सभी उनके हैं। ऐसा उदाहरण अन्य कहीं शायद ही प्राप्त हो कि हम जिस सामाजिक ढाँचों पर इतना सोचते हैं, उसके विषय में बिना कुछ कहें ही राम ने सब कुछ कह दिया।

राम ने अपने समय के अनेक विरोधी संस्कृतियों, साधनाओं, जातियों, आचार–निष्ठाओं और विचार–पद्धतियों को आत्मसात् करते हुए उनका समन्वय करने का साहस किया। साहस के लिए शारीरिक और भौतिक बलिष्ठता की आवश्यकता नहीं पड़ती, हृदय में पवित्रता और चरित्र में दृढ़ता की आवश्यकता पड़ती है। साहस का यह गुण राम में पूर्ण रूप से था। तभी तो उन्होंने कदम–कदम पर साहसिक कार्यों का उदाहरण प्रस्तुत किया है।

तुलसीदास ने रामचरितमानस, कवितावली, विनय पत्रिका, दोहावली, उत्तर रामचरित आदि ग्रंथों के माध्यम से, अपनी रसास्क्ति लेखनी से, सरल शब्द–सर्जना से, राम के चरित्र को जैसा प्रस्तुत किया, वैसा कोई अन्य नहीं कर सका। तुलसीदास जब राम को राजा बना देते हैं तब ऐसा लगता है कि राजा शब्द केवल राम के लिए ही बना है। अपने पूरे जीवन में राम ने समाजवाद की स्थापना करना चाहा है।

सत्य भी तो है कि सामाजिक मूल्य व्यक्ति के हित और स्वार्थ से ऊपर होते हैं। राम ने भी समाजवाद के इस अर्थ को अपने जीवन में उतारा और अपने आचरणों से लोगों को समझाया भी। वैसे तो संपूर्ण रामचरित मानस भी यही सीख देता है। वास्तव में समाजवाद राम के चरित्र में विशेष महत्त्व रखता है। सत्ता–सुख को त्यागकर, समाजवाद को ढोकर राम ने अपने साहस का परिचय दिया है। त्याग की भावना साहसिक कृत्य का सर्वोच्च उदाहरण है। अगर व्यक्ति में साहस नहीं है, तो जीवन नहीं है। साहस, सत्जीवन का आधार है।

राज्याभिषेक की तैयारी हो रही थी और पिता की आज्ञा पाकर पत्नी के साथ वन जाने को तैयार हो जाना, साहस का ही तो परिणाम है। वे चाहते तो विद्रोह कर बैठते। संभव था कि कारागार में डाल दिए जाते। दर–दर तो नहीं भटकना पड़ता। वैसे तो वे थे सर्व–शक्तिमान! उनके लिए कुछ भी असंभव नहीं था, परन्तु पितृ–आज्ञा को स्वीकार कर उन्होंने एक आदर्श प्रस्तुत किया। राम अयोध्या जैसे देश के युवराज थे। अपनी सारी विलासिता त्यागकर, गंगा तट से रथ भी वापस भेजकर, नंगे पाँव, वल्कल वस्त्र धारण करके वन–पथ पर चल पड़े। राम ने अपने साहस के बूते पर सामान्य जनों के कष्टों की अनुभूति करने के साथ ही आदर्श की भी स्थापना की। चित्रकूट में वास करते समय भेद रहित होकर कोल–भीलों का साहचर्य लिया, –

'कोल किरात बेष सब आए। रचे परन तृन सदन सुहाए।।
बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला। एक ललित लघु एक बिसाला।।'

वन में ऋषि–मुनियों की अस्थियों को देखकर, दूसरे के दुख से दुखी होकर निसिचर हीन करने का प्रण करना भी कम बड़ा साहसिक कार्य नहीं है –

'निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह।।'

साहसी व्यक्ति में एक गुप्त शक्ति रहती है, जिसके बल पर वह दूसरे की रक्षा में अपना प्राण तक उत्सर्ग करने को तत्पर हो जाता है। देश, धर्म, जाति या परिवार वाले के लिए ही नहीं, संकट में पड़े अपरिचित व्यक्ति या किसी अन्य जीव की सहायता के लिए भी तत्परता बनी रहती है। साहसी व्यक्ति दूसरे के लिए भी हर प्रकार के क्लेशों को हर्षित होकर सहन कर लेता है। राम ने अदम्य साहस का दृष्टांत उस समय भी प्रस्तुत किया, जब प्रवाहमय जलधि की जलधारा को स्थिर करने का निश्चय किया। सच ही, यह राम का साहस ही था कि समुद्र को मानव रूप धारण कर उनकी

शरण में आना पड़ा। राम जैसा व्यक्ति ही संपूर्ण साहस से यह कह सकता है कि प्रजा की खुशी के लिए अर्धांगिनी सीता का परित्याग करने में रंच मात्र भी क्लेश नहीं होगा।

साहसी व्यक्ति कर्त्तव्यपरायण होता है। उसे अपने कर्मों पर अटूट विश्वास होता है। राम ने भी यहीं किया। वे अच्छी तरह से जानते थे कि रावण महाबलशाली है। उसमें अकूत शक्ति है। उसका बेटा इन्द्र को जीत चुका है, परन्तु सीता की रक्षा के लिए रावण जैसे महापराक्रमी से युद्ध कर के विजयश्री प्राप्त किया।

अपने पूरे वनवास काल में राम ने अत्याचारी व्यक्तियों और अनीतिपूर्ण राज्यों का अंत करके जहाँ राजनैतिक स्थिति को दृढ़ किया, वहीं दंडक वन में खर, दूषण और तृशिरा बंधुओं का संहार भी किया। बालि का वध करके उसके छोटे भाई सुग्रीव को तथा रावण का वध करके उसके छोटे भाई विभीषण को राज्य देकर वसुधा को आसुरी प्रवृत्तियों से मुक्त किया। निषादराज गुह, पंपापुर के राजा सुग्रीव, विभीषण के अतिरिक्त अन्य वानर–भालुओं, कोल–किरातों के साथ मैत्री स्थापित किया। वन की वृद्धा भिलनी शबरी का जूठन खाया।

राम के इस संपूर्ण व्यक्तित्व से उनकी साहसिक प्रवृत्ति ही प्रतिबिंबित होती है। उन्होंने अपने कर्मों से सामाजिक, धार्मिक, बौद्धिक, सभी क्षेत्रों में साहस का परिचय दिया है। निश्चय ही राम अपने इन्हीं गुणों के कारण आज भी मंदिरों के चहारदीवारों के कैद से मुक्त होकर समस्त जन–मन के हृदय पर राज करते हैं। वे सबके प्रेरक हैं। सबके लिए अतिरिक्त ऊर्जा हैं। राम को निम्नलिखित रूपों में सामाजिक अत्याचार दिखाई देता है, जिसे आज संस्कृति कहा जा रहा है। –

'बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। ते लंपट परधन परदारा।।
मनहिं मातु पिता नहीं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा।।'

अपने श्रेष्ठ आचरण तथा अद्‌भुत साहस के साथ राम ने जिस जीवन को भोगा, उसमें अनेक व्यक्तियों का सानिध्य रहा। उनके संपर्क में आने

वाले व्यक्तियों में सरल एवं कूटिल–मना, सभी थे। ऐसा देखा जा सकता है कि उनके संपर्क में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति साहसी हो गया तथा अपने जीवन को धन्य कर लिया। राम भरत के भाई थे। राम के वन गमन के उपरांत भरत को ही सत्तारूढ़ होना था, लेकिन वे ननिहाल से आकर गद्दी पर नहीं बैठे। भाई को मनाने चल दिए और उनके नहीं मानने की स्थिति में तपस्वी का जीवन व्यतित करते हुए प्रजा के सामने त्याग और कर्त्तव्यपरायणता का आदर्श रखा तथा राम की ओर से चौदह वर्ष तक राज्य का प्रबंध किया। भरत पर राम को दृढ़ विश्वास भी तो था। –

'भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरिहर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ।।'

लक्ष्मण भी राम के अनुज थे। उन्होंने भी राज–सुख त्यागकर चौदह वर्ष तक क्षुब्धा और निद्रा को त्यागकर प्रतिबिम्ब की भाँति राम की सेवा करते हुए आर्दश स्थापित किया। वन जाते समय राम को पार उतारने के लिए केवट ने उनका पाँव धोने के हठ का साहस किया। उनके चरणामृत को लेकर परमगति को प्राप्त हुआ।

राम के चरित्र के साथ मारीच का बहुत निकट का संबंध है। मारीच राम के पौरुष से परिचित था। मोक्ष–प्राप्ति की लालसा में वह स्वर्ण–हिरण बन बैठा। राम के संपर्क में आने पर समुद्र भी अपनी जलधाराओं को स्थिर करने का साहस कर लेता है। गिद्ध जटायु भी रावण जैसे पराक्रमी योद्धा से दो–दो हाथ करने का साहस कर लेता है। राम के संपर्क में आने पर हनुमान समुद्र को लांघकर लंका को जलाने का साहस कर लेते हैं। एक राजा के दरबार में जाकर, उसके सामने पाँव जमाने वाले अंगद का साहस भी राम से ही प्रेरित है। राम का साहस हमारी वृत्तियों को उर्ध्वगामी बनाने की प्रेरणा देता है।

राम विष्णु के अवतार और परब्रह्म स्वरूप हैं। राम में शक्ति, सौन्दर्य तथा साहस का समन्वय है। उनका लोकरक्षक रूप प्रधान है। वे मर्यादा पुरुषोत्तम और आदर्श के प्रतिष्ठापक हैं। उन्होंने जीवन की अनेक उच्च

भूमियाँ प्रस्तुत की हैं। राम ने गृहस्त जीवन की उपेक्षा नहीं की, अपितु लोक सेवा और आदर्श गृहस्त का उदाहरण उपस्थित करके सामान्य जन के जीवन स्तर को भी ऊँचा उठाने का स्तुत्य प्रयत्न किया। राम इतिहास ही नहीं, वर्तमान और भविष्य भी हैं।

राम सृष्टि के कण–कण में विद्यमान हैं। वे अन्न और जल के समान सुलभ हैं। वर्तमान राजनैतिक तिकड़म, सामाजिक अस्थिरता और भौतिक आकर्षण के समय में राम के साहस और आदर्श का स्मरण होते ही एक आदर्श समाज की संरचना हृदय–पटल पर चित्रित हो जाती है। ऐसा समाज, जिसमें सभी व्यक्ति अपने धर्म (कर्त्तव्य) का पालन करते हों। अनीति न हो। वैमनस्य न हो। पारस्परिक स्नेह हो। श्रम की महत्ता हो। सभी स्वावलंबी हो। कुंठा का नाम न हो। परोपकार अनिवार्य भाषा हो।

आज हमें भी अपनी आंतरिक शक्तियों को एकत्रित कर सामाजिक बुराइयों के अंत का प्रण करना पड़ेगा। राम और उनके साहस को सार्थक करना पड़ेगा। जब ऐसा होगा, तब पुनः विश्व में भारत का जयघोष होगा। समाजवाद का सोच सार्थक होगा। सामाजिक समरसता फैलेगी और सभी प्रकार के सुखों से देश भर जाएगा। तब निश्चित ही किसी तुलसीदास की लेखनी से पुनः लिखा जाएगा, –

'नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लछन हीना।।
अल्प मृत्यु नहिं कबनिहु पीरा। सब सुन्दर सब निरुज सरीरा।।'

समाज की वर्तमान स्थिति में राम की प्रासंगिकता पुनः दृष्टिगत हो रही है। आज समाज में सामाजिक चिंतन छोड़कर केवल वाद ही वाद दिखाई दे रहा है। लड़कियाँ, कन्याएँ तथा छात्राएँ डरी–सहमी सी दिखाई देने लगी हैं। अनेक सीताओं का शील हरण किया जा रहा है। आज का रावण दस नहीं, असंख्य चेहरों में जी रहा है। महँगाई डायन सुरसा बनी, जन–सामान्य को निगलने के लिए तत्पर है।

राम! आपको एक बार पुनः 'निसिचर हीन करहुँ महि' का प्रण करना ही पड़ेगा। एक बार पुनः समता मूलक समाज की वास्तु तैयार

करनी ही पड़ेगी। वैसे तो यहाँ सब हैं, लक्ष्मण भी, शत्रुघ्न भी, भरत भी। सीता, रावण और सुरसा भी। बस आप नहीं हैं तारनहार! देश की जनता एक बार पुनः आपका जन्मोत्सव मनाने को तैयार है और तैयार है स्तुति के लिए। –

'भये प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्‌भुत रूप निहारी।'

ooo

धार्मिक पौधा तुलसी का पर्यावरणीय महत्व

– अंकुश्री

प्राचीन ऋषि–मुनियों ने बहुत सोच–समझ कर धर्म का स्वरूप प्रतिपादित किया था। तदनुसार धार्मिक आस्थाओं का विकास हुआ। आस्थाओं के मूल रूप का वैज्ञानिक पक्ष बड़ा स्पष्ट था। उन्हीं आस्थाओं में एक है तुलसी का पौधा। हिन्दुओं के घर–घर में तुलसी–चौरे पर यह पौधा लगाया जाता है। नन्हा–सा पौधा होने के कारण इसे सुविधानुसार लोग बगान या गमले में भी लगा लेते हैं।

तुलसी का झाड़ीनुमा नन्हा–सा पौधा अनेक रोगों में चमात्कारिक औषधि के रूप में प्रयुक्त होता है। इसकी गंध से आसपास की हवा शुद्ध रहती है और लोग भला–चंगा बने रहते हैं।

महिलाएँ कार्तिक महीने में तुलसी–चौरे के पास संध्याकाल में नियमित रूप से दीप जलाती हैं। प्रति दिन तुलसी में जल डालती हैं; ताकि पौधा हरा–भरा बना रहे और उनका सुहाग और सौभाग्य भी उसी तरह हरा–भरा बना रहे।

अनेक हिन्दू ग्रंथों में इस पौधे का महत्व दर्शाया गया है। 'रामचरितमानस' में गोस्वामी तुलसीदास ने विभीषण के घर में तुलसी के पौधा का जिक्र किया है,

''रामायुध अंकित गृह, शोभा बरनि न जाई !
नव तुलसी का वृंद तहं, देख कपि हरषाई !!''

तुलसी के जन्म की कथा समुद्र–मंथन से जुड़ी है। समुन्द्र–मंथन के समय अमृत–कलश मिलने पर उसे देख कर देवताओं की आँखों में श्रम–सार्थकता से वशीभूत होकर आँसू निकल पड़े थे। उन्हीं अश्रु–बूंदों से तुलसी का पौधा उत्पन्न हुआ मानते हैं।

तुलसी का वानस्पिति नाम 'औसीमम सैक्टम' है, जो इसकी मुख्य प्रजाति है। तुलसी की मुख्यतः दो जातियां पाई जाती हैं। एक हरी पत्तियों वाली, जिसे श्री तुलसी, श्वेत तुलसी या राम तुलसी कहते हैं। दूसरी जाति के पौधे की पत्तियों का रंग नीलाभ होता है, जिसे कृष्ण तुलसी या श्याम तुलसी कहते हैं। अंग्रेजी में राम तुलसी (हरी तुलसी) को ग्वाहइट वेसिल और कृष्ण(नीली) तुलसी को परपल स्टाक्ड वेसिल कहते हैं।

तुलसी का पौधा सर्वत्र पाया जाता है। इसे 'अकाल मृत्युहरणं सर्व व्याधि विनाशनम्' कहा गया है। विभिन्न महामारियों में इसका चमात्कारिक प्रभाव एक अकाट्य सत्य है। इसमें उत्तम रस होने से इसे 'सु–रसा' कहते हैं। गाँव–गाँव में यह सुलभता से मिल जाती है, इसलिए इसे 'ग्राम्या' और 'सुलभा' भी कहते हैं। दर्द नाशक गुण के कारण इसे 'सुलघ्नी' कहते हैं।

तीखी, कड़वी, थोड़ी कसैली और रुचि बढ़ाने वाली तुलसी वात और कफ नाशक, विषघ्न तथा चर्मरोगनाशक होती है। आयु और मौसम के अनुसार इसकी 5 से 25 पत्तियाँ उपयोग में लाई जाती हैं। स्वरस की मात्रा व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार चौथाई से एक चमच दी जाती है। तुलसी की मंजरी मूत्र–शोधक तथा शक्तिवर्द्धक है, जिसकी एक ग्राम मात्रा प्रयुक्त की जाती है।

तुलसी पत्ती के साथ अदरक, चीनी और दूध मिला कर बनाई गई चाय को आरोग्यवर्द्धक चाय कहते हैं, जो बहुत उपयोगी होती है। स्वाद बढ़ाने के लिये इसमें इलायची और सौंफ भी डाला जाता है। इस चाय को

पीने से स्मरण शक्ति और किडनी की कार्यशक्ति बढ़ती है। इस चाय से ताज़गी और स्फूर्ति बढ़ जाती है।

शास्त्रीय विधान और धार्मिक महत्व के साथ ही तुलसी का वैज्ञानिक स्वरूप भी है। इसका पौधा कीटनाशक होता है, जो वायु प्रदूषण कम कर आसपास की हवा को शुद्ध करता है। इससे दुर्गंध का नाश होता है और जहाँ तक इसकी गंध जाती है, वातारण शुद्ध बना रहता है। विषाक्त जीव–जंतु, मच्छर तथा कीटाणु आदि इससे नष्ट हो जाते हैं।

पर्यावरणीय पक्ष इसका इतना मजबूत है कि इसकी पत्तियाँ डाल देने से भोजनादि सड़ नहीं पाता। पत्तियों के सेवन से रक्त शुद्ध बना रहता है।

धर्म समाज में तभी सुस्थिर हो पाता है, जब धार्मिक पक्ष के साथ ही उसका लाभकारी पक्ष भी दिखाई दे। प्राचीन काल से तुलसी को धार्मिक महत्व प्राप्त रहना इसका पर्यावरणीय पक्ष ही है। पर्यावरण शब्द के प्रयोग का प्रचलन भले बहुत पुराना नहीं है, मगर पर्यावरणीय सोच नई बात नहीं है। प्राचीन ऋषि–मुनियों की पर्यावरणीय सोच बहत गहरी थी और वे हर व्यवस्था पर्यावरण की सुरक्षा को दृष्टिपथ में रख कर प्रतिपादित किया करते थे। तभी तो तुलसी को प्राचीन काल से ही लोकप्रियता प्राप्त है। तुलसी की लोकप्रियता को अनेक गीतों में पिरोया गया है,

'अँगनइया बीचे तुलसी लगा द हरि
जो मोरा तुलसी के जल ढ़रिहें
जनम–जनम सुहागिन हरि
अँगनइया बीचे तुलसी लगा द हरि – –'

// // //

'कँहवा हो तुलसी के नइहर, कँहवा हो ससुरार
कँहवा हो तुलसी जनम लेली, के बा रोपनहार– – '

// // //

'खड़े भजो हरि नाम हो, अँगना बीचे तुलसी
अँगना बीचे तुलसी के चउड़ा हो, अँगना बीचे तुलसी ।'

// // //

तुलसी के देखि के जंगलवा सब मोहे राम
हमहू तुलसी होई जईंती सबेरे
भजो रे मन तुलसी के सांझ–सबेरे – – '

// // //

'जेठ में तुलसी के बीज पड़े
असाढ़ में तुलसी होली दू–दू पात
सावन में तुलसी में हरिहर डाल
श्रीमन नारायण–नारायण बोल सखी– – '

धर्म का संबंध यों तो महिला और पुरुष दोनों से होता है। किन्तु महिलाएँ धर्म–पालन में विशेष रुचि लेती हैं और उसमें लगी रहती हैं। गीत या भजन गाने में भी महिलाएँ ही आगे रहती हैं। इसलिए तुलसी से संबंधित लोकगीतों में महिलाओं के सुहाग और सौभाग्य की बातें अधिक उजागर होती हैं। इस तरह वे जाने–अनजाने तुलसी के पर्यावरणीय पक्ष का लोकगीतों के माध्यम से प्रचार करती रहती हैं। पर्यावरणीय महत्व की तुलसी है ही इतनी गुणकारी।

ooo

तीर्थस्थलों का उद्‌भव और महत्व

- गौरीशंकर वैश्य विनम्र

भारतवर्ष की पुण्य धरा पर पग - पग पर दिव्य तीर्थ विद्‌यमान हैं। जहाँ पर जन्म लेने के लिए देवता भी तरसते हैं। हमारे शास्त्र - पुराणों में इन पावन तीर्थों का महिमागान भरा पड़ा है। लोककल्याण के लिए हमारे महान ऋषियों - मनीषियों की गहन तपसाधना के दिव्य प्रभाव उनकी साधना स्थलियों में आज भी भासमान हैं जिन्हें प्रत्येक आस्थावान सहज ही अनुभव कर सकता है।

तीर्थ शब्द का अर्थ है - पाप से तारने वाला , पार उतारने वाला। इसका अभिप्राय है कि वह पुण्य स्थान जो अपने में पुनीत हो और वहाँ आने वालों में भी पवित्रता का संचार कर सके। तीर्थ की मान्यता भारतीय धर्मों में ही नहीं , अपितु बौद्‌ध, जैन, सिख, ईसाई, इस्लाम, पारसी, यहूदी, ताओ, शितो आदि धर्मों में भी है।

भारतवर्ष में हिन्दू धर्मान्तर्गत कुछ नदियों. जलाशयों , पर्वतों तथा वनों को भी पुण्य फल देने वाला कहा गया है। कुछ पुराणों में तीर्थस्थलों के उद्‌भव और उनके महत्व का इस प्रकार उल्लेख है -

यथा शरीरस्योद्‌देशाः केचिन्मेध्यतमाः स्मृताः,
तथा पृथिव्या उद्‌देशाः केचित पुण्यतमा स्मृताः।
प्रभावाद्‌दभूताद भूमेःसलिलस्य च तेजसा,

परिग्रहान्मुनीनां च तीर्थानां पुण्यता स्मृताः।

अर्थात " जिस प्रकार से शरीर के कुछ अंग - यथा दाहिना हाथ या कान, शरीर के दूसरे अंगों से कहीं अधिक पवित्र माने जाते हैं , उसी प्रकार से इस पृथ्वी पर भी कुछ स्थल पवित्र हैं। यह स्थल तीन कारणों से पवित्र कहे गए हैं - अद्भुत प्राकृतिक शोभा , जलयुक्त स्थल की मनमोहक सुंदरता, किसी तपस्वी या मुनि के वहाँ निवास के कारण। "

अतः ऐसे मनोरम और पवित्र स्थलों को तीर्थस्थल कहा जाता है। यहाँ मानव का सांसारिक विषय - वासना में लिप्त चंचल मन परम शाश्वत ब्रह्म की सत्ता की ओर आकर्षित हो जाता है। वेदों और पुराणों में पर्वतों एवं नदियों को पवित्र माना गया है। 'ऋग्वेद' में पर्वतों की स्तुति की गई है कि हे इंद्र और पर्वत , आप हमें पवित्र कर अनुग्रहीत कर दें। इसी प्रकार 'अथर्ववेद' में जल को शुद्ध और पवित्र करने वाला मानते हुए जल देवता से शांति और सुख प्रदान करने की प्रार्थना की गई है।

वैदिक नियम के अनुसार-

अन्य क्षेत्रे कृतं पापं तीर्थ क्षेत्रे विनश्यति,
तीर्थ क्षेत्रे कृतं पापं बज्रलेपी भविश्यति।

अर्थात अन्य स्थान का किया हुआ पाप तीर्थ में जाने से छूट जाता है और तीर्थ स्थल में किया हुआ पाप बज्रलेप (कभी न नष्ट होने वाला)हो जाता है।

इसलिए सभी भक्तों को तीर्थों में पाप न करके श्रद्धा से भगवत दर्शन करें और दानादि अवश्य करें।

तीर्थानां दर्शनं श्रेष्ठं स्नान चैव सुरेश्वरि,
श्रवण च प्रशंसंति सदैव ऋषिसत्तम।

अर्थात महादेव जी पार्वती जी से कहते हैं कि ऋषियों के निवासस्थान तीर्थों में जाकर स्नान. दान, दर्शन एवं प्रशंसा श्रवण करने से मानव के संपूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं और मन पवित्र हो जाता है। हे प्रिये! तीर्थों में अपने धर्मबुद्धि के लिए अवश्य जाना चाहिए।

रवींद्रनाथ टैगोर ने भारतीयों के हृदय में ईश्वर के प्रति अटूट आस्था और विश्वास को व्यक्त करते हुए अपनी 'साधना' में लिखा है -

भारतवर्ष में तीर्थ यात्रा के स्थलों को वहाँ चुना , जहाँ प्रकृति में कुछ रमणीयता थी, जिससे कि मन संकीर्ण आवश्यकताओं के ऊपर उठ सके और अनंत में अपनी स्थिति का परिज्ञान कर सके।

धर्मग्रंथों में कहा गया है -

तीर्थे तीर्थे निर्मलं वृंद वृंद
वृंदे वृंदे तत्वचिंतानुवादः।
वादे वादे जायते तत्वबोधः
बोधे बोधे भासते चंद्रचूड़ः।

अर्थात तीर्थों में निर्मल हृदय व्यक्तियों का निवास है। उन व्यक्तियों में तत्वचिंतानुवाद अर्थात आध्यात्मिक चर्चा होती है और तत्वबोध होने पर भगवत प्राप्ति की अनुभूति हो जाती है।

इस प्रकार तीर्थ हमारे लिए आध्यात्मिक शिक्षा के केंद्र हैं। महात्माओं के दर्शन हमें तीर्थ स्थानों में प्राप्त होते हैं। बड़े - बड़े धार्मिक कृत्य, महायज्ञ तीर्थों में ही हुए हैं और होते हैं। इस कारण वहाँ का वातावरण धार्मिक और आध्यात्मिक होता है , जहाँ पवित्र शुभ - भावना का उदय होता है।

तीर्थ को लेकर आम धारणा यह है कि वे स्वयं तो पवित्र होते ही हैं, अपने पास आने वालों के अंतःकरण को भी प्रभावित करते हैं। लेकिन रुककर सोचें, तो कुछ उल्टा भी हो रहा है। अब तीर्थ सेवन का अर्थ केवल पर्यटन और मनोरंजन हो गया है। तीर्थों में भी वैभव का प्रदर्शन बढ़ा है जिससे आस्था के स्थान पर सुख - सुविधाओं का उपयोग , भक्ति गीतों का शोर और कर्मकाण्डों का बोलबाला है। तीर्थों में आए दिन मचने वाली भगदड़ और दुर्घटनाएं इसी श्रंखला में देखा जा सकती है। तीर्थ स्थानों को वहाँ के मौसम के अनुकूल होने पर ही जाना चाहिए जिससे बाढ़ , भूस्खलन जैसी आपदाओं से बचा जा सके।

तीर्थ तो मुक्ति और आध्यात्मिक शांति के प्रतीक हैं। हमें उन्हें आसक्ति के साधन नहीं बनाने चाहिए। तीर्थ जीवन की आवश्यकता हैं लेकिन उसे घर बनाने की भूल न करें। घर को तीर्थ बनाएँ। शरीर को तीर्थ बनाएँ। भावनाओं और विचारों को तीर्थ बनाएँ। तीर्थाटन पवित्र भाव लेकर करें। यही व्यक्ति के लिए श्रेयस्कर है और जीवन के लिए उपयोगी भी।

ooo

शीराज़ा हिन्दी (द्विमासिक) लेखकों से अनुरोध

1. शीराज़ा हिन्दी में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ प्रायः कृति देव 10 फांट में टंकित रूप में भेजी जाएँ। रचनाओं के साथ मौलिक एवं अप्रकाशित होने का प्रमाण पत्र भी भेजने का कष्ट करें।
2. अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है। इससे रचना पर निर्णय लेने में हमें सुविधा होगी। मूल कविता का लिप्यंतरण टंकित होने पर उसकी वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ प्रायः नहीं होंगी , अतः टंकित लिप्यंतरण ही अपेक्षित है। रचना में अपना नाम , पता, मोबाइल नंबर और ई मेल भी देने का कष्ट करें।
3. सामग्री के प्रकाशन विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।
4. रचनाओं की अस्वीकृति के संबंध में अलग से कोई पत्राचार कर पाना हमारे लिए संभव नहीं है।
5. समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए।

पत्र व्यवहार का पता

संपादक

शीराज़ा हिंदी,

जे. एंड के. अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़

कैनाल रोड, जम्मू 181202 , जम्मू व कश्मीर

ई मेल – trcjkaacl@gmail.com

PUBLISHED BY THE SECRETARY
J&K ACADEMY OF ART , CULTURE AND LANGUAGES, JAMMU
PRINTED AT GOVERNMENT RANBIR PRESS, JAMMU